

* अवतार मीमांसा *

श्रीमत्परमहंसावतंस निखिलशास्त्र विष्णात सुप्रसिद्ध
कविवर्य श्री १०८ स्वामि कार्ष्णि गोपालदासेन
विनिर्मिता
तथा च
गोकुलस्थ एक मोती संस्कृत पाठशालाध्यापक
पं० माधव मनोहरेण विरचितया सरलार्थ
भाषा टीकयोपेता
सा च
मथुरास्थ गवर्नमेण्ट हाई स्कूल संस्कृताध्यापक
पं० केशवदेव शास्त्रिणा संशोधिता
जिसको
श्रीस्वामि महंत परमानन्दजी की आज्ञानुसार बंगलोर
सिटी निवासी सन्त सेवी सेठ देवीदास फकीरभाई
कच्छर वाले बजाज ने स्वद्रव्य व्यय से
धर्मार्थ छपा कर प्रकाशित किया।

प्रथमावृत्ति १००० } { संवत १९८१ सन् १९२४



॥ ॐ ॥

॥ काण्णि पञ्चकम् ॥

कश्चिद् ध्यान परायणो मृगयते, कृष्णं स्वकीये हृदि,
वेदान्तेषु यति विचार चतुरो, मन्ता मुनिः स्वात्मनि ॥
कश्चिज्ज्ञश्च चराचरेष्वचपलो, नाना क्रिया कर्म सु,
कालिन्दी पुलिनेषु तञ्च मृगये, काण्णिस्त्वहं कश्चन ॥ १ ॥
वैकुण्ठे विविधाश्च वैष्णवजना, जानन्ति कृष्णं स्थितं,
गोलोके गुरवश्च केचन सदा, क्षीराब्धि धाम्नीश्वरम् ॥
लोके केचन केशवं श्रुतिवचो, निर्मेहणो वैदिका,
जाने नन्द नृपालये तमधुना, काण्णिस्त्वहं कश्चन ॥ २ ॥
कृष्णं चारु चतुर्भुजश्च चतुरा, जानन्ति पौराणिका,
ईशं केचन भास्करं त्रिनयनं, नागाननं केचन ॥
जाने तं परमेश्वरं द्विनयनं, कृष्णं द्वि बाहुं भजे,
वंशी वादन तत्परं प्रियवरं, काण्णिस्त्वहं कश्चन ॥ ३ ॥
पूर्णं निर्गुण मक्रियं चितिमयं, ज्योतिः स्वरूपं विभु,
मानन्दं तनु नाम रूप विधुरं, कश्चिज्जनो मन्यते ॥
वृन्दारण्य कदम्ब कुञ्ज ललिते, रासोत्सवे स प्रियं,
मन्ये नृत्यपरं प्रभु प्रिय तरं, काण्णिस्त्वहं कश्चन ॥ ४ ॥
शीर्षेबर्हधरं सु वेतस करं, बिम्बाधरं श्यामलं,
मन्ये वै वन मालया मणि मयैः, श्री मण्डनै मंण्डितम् ॥
गोपं गोप सुतश्च धेन्वनुगतं, ब्रह्म द्वितीयं परे,
वामं काम कदम्ब कान्ति कवलं, काण्णिस्त्वहं कश्चन ॥ ५ ॥

इति श्री स्वामि काण्णि गोपालदास विनिर्मितं काण्णिपञ्चकं
समाप्तम् ।

हार्दिक धन्यवाद पत्र

श्री मत्परमहंसावतंस परिव्राजकाचार्य निखिल शास्त्र निष्णात ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी कार्ष्णि गोपालदास महाराज जी को, कोटिशः हार्दिक धन्यवाद है। जिन्होंने लोकोपकारार्थ, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में भगवत्प्रेमियों के हितार्थ श्रुति स्मृति अनुसार अनेक ग्रन्थ रचकर, अति दुस्तर दुर्बोध उपासना और ज्ञान मार्ग को अत्यन्त स्पष्ट दिखा दिया है। और अतीव अनुग्रह दृष्टि से अस्मदादि बहिर्मुख पुरुषों को भगवत्प्रेम मार्ग तथा भगवत नामस्मरण का यश श्रवण कराकर मोक्ष मार्ग में उपस्थित किये हैं। तिस में भी-ईश्वरावतार सम्बन्धि अनेक शंकाय होने से, ईश्वरावतारोपासक भगवतानुरागि पुरुषों के संदेह निवृत्त्यर्थ "अवतार मीमांसा" ग्रन्थ संस्कृत में रचते भये।

परन्तु संस्कृत होने से सो ग्रन्थ सर्व साधारण के उपयोगी न होता भया। इस लिये सर्व के सुलभ विज्ञानार्थ-गोकुलस्थ रत्नमोती संस्कृत पाठशालाध्यापक पं० माधव मनोहर शास्त्रिजी ने सरलार्थ भाषा टीका से भूषित किया है। यद्यपि-भगवत्सम्बन्धि ग्रन्थों के निर्मित होने से, भगवतानुरागी पुरुषों को परमानन्द होता है, तथापि-मुद्रित हुए बिना सर्व के उपकारिक नहीं हो सकता यह विचार कर-कनखल के श्री स्वामी महंत परमानन्द जी तथा पेघोर के श्री स्वामी महंत सच्चिदानन्दजी और महावन के श्री स्वामी भास्करानन्दजी के आज्ञाकारी सेवक भक्त. मंगोलाल होतीलाल रामचन्द्र वा बाबूलाल जी, तथा भगवत्कृपापात्र मथुरा के बाबू नवल

किशोर कपूर, और जैओ के भक्त विहारीलाल नन्दलाल इन सर्व उदारत्मा भगवत्प्रेमी महानुभावों ने कहा, कि-इसकी छपाई का जो खर्च होगा, वो हम सर्व मिल कर करेंगे। इन महानुभावों कर उत्साह बढ़ाने से ही मैं ने "अवतार मीमांसा" छपना प्रारम्भ करा दिया। परन्तु बीच में ही बंगलोर निवासी भगवत्कृपा पात्र संत सेवी सेठ देवीदासजी ने अत्यंत हर्षदायक पत्र भेजा, कि-अवतार मीमांसा की छपाई का जो कुछ खर्च हो, सो मेरी तरफ़ से हो, यह प्रार्थना अवश्य ही स्वीकार की जाय, अतः ऐसे धर्म विवसाई दानवीर सेठ देवीदास जी को शतशः धन्य वाद हैं, केवल यह मेरा ही कथन नहीं है, किंतु उपरोक्त महात्माजन तथा हरि भक्त सर्व ही आपको हार्दिक शतशः धन्यवाद प्रदान करते हैं। जो न्यायोपार्जित निजद्रव्य व्ययसे भगवत्सम्बन्धि सद्ग्रन्थों को आप छपाकर धर्मार्थ प्रदान करते हैं। शुभं भूयात विज्ञेपु-

भवदीय कृपा कांक्षि-

कार्ष्णि हरिनामदास, भिक्षु।





श्री वृन्दावनविहारिणे नमः

श्रीमत्परमहंसावतंस निखिल शास्त्र निष्णात ब्रह्मनिष्ठ
श्री १०८ स्वामि कार्ष्णि गोपालदास जी
गोलोक निवासी का संक्षिप्त

* जीवन परिचय *

शतशः धन्यवाद उस करुणामय परिपूर्ण परमपिता परमात्मा को है, कि जिसने लोक में भगवत्प्रेमाभक्ति के वृद्धि निमित्त भगवत्में अनन्य भावादि दैवी गुण युक्त श्रीकार्ष्णि जी को प्रकट किया है। जिनके दर्शन संभाषण से अस्मदादिक बहिर्मुख पुरुषों को यदकिंचित्भगवत्प्रेम का लवांशांश प्राप्त हुआ है। उन श्रीकार्ष्णि जी ने आजन्म साधुता के गुणों को धारण करके स्वकर्त्तव्य का पालन किया है। इसी तरह हम आशा करते हैं, कि उनके चरित्र को अवलोकन कर तथा उनके निर्मित ग्रन्थरूप उपदेशों से शिक्षा प्राप्त कर भगवत्में अनन्य प्रेम को प्रगट करते हुए स्वजन्म को सफल करेंगे।

(१) जन्म भूमि—देश पंजाब, प्रांत सरहद, ज़िले हरिपुर हज़ारा, मौज़े बगड़ा, में सम्वत् १९१९ फाल्गुण मिती ३ को द्विजाती कुल, भार्गव गोत्र में जन्म पाया, और भगवानदास नाम रखागया, पिता का नाम जुवाहरमल था, और पांचवें वर्ष मुण्डन कृष्ण जन्माष्टमी को हुआ, दसवे वर्ष जनेऊ, और चौदहवे वर्ष संवत् १९३३ में विवाह हुआ, तथा अठारहवे वर्ष एक कन्या उत्पन्न हुई।

(२) विद्यारम्भ—जनेऊ होने के बाद कुलाचार्य्य पंडित जयराम शर्म्मा जी से कुछ व्याकरण तथा धार्मिक विद्या

अध्ययन की, और मास्टर श्यामसिंह जी से व्यवहारिक विद्या की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु गृहस्थाश्रम में भी भगवत्प्रेमी हरि भक्तों में, और साधु महात्माओं के सत्संग की, अधिक रुचि रहती थी, और व्यवहार ऐसा शुद्ध था, कि आवाल वृद्ध सर्व प्रशंसा ही करते रहते थे, तथा माता पिता आदि की सेवा भी आप पूर्व ऋषियों की नाईं किया करते थे, परंतु चित्त में यही विचार रहता था, कि-कब इस आश्रम को त्यागकर स्वतंत्रता से गंगादि के तट पर वास कर अनन्यभाव द्वारा भगवत्स्मरण करूं, इस प्रकार निष्काम कर्म करने से चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर संसार से उपरामता को प्राप्त होते भये, उसी समय पिताजी का स्वर्गनिवास हुआ, तब आप स्वतंत्र होगये अत्ययंत वैराग्य के कारण बीस वर्ष की ही अवस्था में गृहस्थाश्रम को त्याग दिया।

(३) सन्यास धारण-बीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम वानप्रस्थ रहे, उसके बाद मधुपुरी "श्रीमथुराजी" में श्रीमत् परमहंस स्वामि कार्ष्णि ज्ञानदास जी से सम्वत् १९४० में विधि पूर्वक संन्यास ग्रहण किया। तब से नाम श्री स्वामि गोपालदासजी हुआ। उस समयसे निवास आपका श्रीव्रज भूमि में ही रहा। तब स्वस्वामिजी से विशेष व्याकरण और वेदान्त तथा श्री मद्भागवतादि आर्ष ग्रंथों का अध्ययन किया। परन्तु बीच में व्रजमंडल श्री जगन्नाथ जी हरिद्वार ऋषिकेश पंजाब की यात्रा स्व स्वामिजी के साथ भी की। और एक समय स्वामि जी की आज्ञानुसार स्व सहचारी महात्माओं (स्वामि नरोत्तम दास जी, स्वामि हीरानन्दजी) के साथ चारों धाम और सातों पुरियों की यात्रा को जाते भये उस समय उड़ीसा, मदरास, बम्बई, दक्षिण, मध्यदेश तथा हिमालय की यात्रा को भी करते भये। स्वपूज्यवर्य्य गुरू महाराज जी के गोलोक निवास के

बाद स्वतन्त्रता से विचरने लगे। कभी काशी, चित्रकूट, हरिद्वारादि शुभ स्थानों पर तथा गंगा यमुना के मध्य में विचरते भये। परन्तु अधिक निवास व्रजभूमि में ही होता था, उन्ही दिनों में ज्ञान, वैराग्य भगवत्प्रेमाभक्ति के परिवर्द्धक अनेक ग्रन्थ भगवत् रसिक महात्माओं की प्रेरणा से बनाये। इसके पीछे सम्वत् १९६८ से विशेषता कर, हरिद्वार कनखल, चेतन देवाश्रम्, महावन, जयश्री पैवोर, वृन्दावन इत्यादि स्थानों में निवास होता रहा। ग्रीष्म ऋतु में हरिद्वार और चातुर्मास व्रज में तथा शीतकाल जयश्री में निवास करते थे। इस समय भी भगवद्भक्ति तथा नीति मिश्रत वेदांत ग्रन्थ कई निर्माण किये। आज पर्यन्त आपका विद्यादि सद्गुणों का भाण्डार केवल हृदय मंजूषा में ही पूर्ण रहा, वो हरिद्वारादि शुभ स्थानों में भगवत्प्रेमी रसिक महात्माओं की अत्यन्त प्रेरणा से श्री मद्भागवत् तथा गीतादि सद्ग्रन्थों के व्याख्यान द्वारा प्रगट करते भये। उस काल में चेतन देवाश्रम् में उपस्थित श्रोतागण अपने जन्म को तथा हरिद्वार यात्रा को सफल मानते भये। और मुक्त मुख से घोषणा करते भये, कि-जैसा शास्त्रों द्वारा वक्ता का लक्षण " निर पेक्षादि " श्रवण किये हैं सो सर्व आप में पाये जाते हैं। उस समय आपके सद्धर्मोपदेश और साधुता की कीर्ति पंजाब, सिंध, मारवाड़, पूर्व गुजरात, दक्षिणादि सर्व देशों में फैल जाती भई। उसका प्रभाव इतना पड़ा जो भगवत्प्रेमी थोड़े काल के लिये हरिद्वार आते थे, वो नियम से अधिक काल निवास करके अर्थात् घर से अनेक चिठ्ठी पत्री आने पर वापिस होते थे। (४) स्वभाव श्रीस्वामि जी बड़े दयावान्, मिलनसार, वीत रागता, निष्किञ्चनता, सारग्राहिता, नम्रता, उदारता, भगवत्परायणतादि सद्गुणों से युक्त थे। आपके

पास जिस किस्म का पुरुष आता था वो आपके वचनामृत रूप सद्धर्मोपदेश श्रवण द्वारा, स्व, स्व, संदेह निवृत्ति पूर्वक भगवतोपासना स्वीकार कर, अत्यंत हर्ष को प्राप्त होकर जाते थे, निष्किञ्चनता आपको ऐसी थी, कई भगवत्प्रेमी मारवाड़ी कलकत्ते के तथा झांसी के, गुजरात के, आपके चरणों में द्रव्य समर्पण की इच्छा कर प्रार्थना किया करते थे, परंतु आप स्वधर्म में ऐसे शुद्ध थे, कि साफ़ जवाब देते भये, कि हमको इस माया जाल में मत फंसाओ, जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां सर्च करो, आज पर्यन्त सदा निवृतिके प्रवृत्ति अङ्गीकारही नहीं की।

(पञ्च तत्व तिथि) इकसठ (६१) वर्ष की अवस्था में शनिवार पौष शुदी ६ सम्वत १६७६ सूर्य्य उत्तरायण काल में गोलोक निवास व्रजमण्डल के अत्यन्त समीप राज्य भरतपुर मुकाम जै श्री नन्दवंशीय भक्त विहारी लाल नन्दलाल जी के परमहंसाश्रम में हुआ। और मथुरापुरी मध्य जल समाधि दी गई थी।

यद्यपि आपका जीवन बहुत विस्तृत है; और सम्पूर्ण मेरे को मालूम भी नहीं है। तथापि आपके सत्संग से जो कुछ श्रवण किया था, उसको संक्षेप से लिखकर, कार्ष्णि समूहकी सेवा में समर्पण करता हूं। यदि सम्पूर्ण लिखें तो एक दूसरा ग्रन्थ त्यार हो जाता, इस लिये इसका नाम "जीवन परिचय" रक्खा है। यह सब कार्ष्णि कलाप की आज्ञानुसार लिखा गया है। ॥ इत्यलं विज्ञेषु ॥

दो०—कार्ष्णि हरिनाम कश्चिद, नियतवास से हीन।
कार्ष्णि गुरु की कृपा से, यह किञ्चित लिख दीन ॥

भवदीय—
कार्ष्णि हरिनाम दास भिक्षु।

ॐ

प्रस्तावना।

संसार में जीवमात्र अत्यंत दुःख निवृत्ति तथा परमानन्दरूप मोक्ष की अभिलाषा करते हैं। क्यों-कि-मोक्ष को प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष, पुनः जन्म मरणादिक संसार चक्र को प्राप्त होता नहीं। यह वार्ता लोक विषे प्रसिद्ध है, तथा "नस पुनरा वर्तते" "यद्गत्वा ननि वर्त्तन्ते" "अनावृत्ति शब्दात्" इत्यादि श्रुति-स्मृति, सूत्र करके भी प्रसिद्ध ही है। परन्तु-प्रथम तो परमात्मा के पवित्र यश का श्रवण व कीर्त्तन विना, द्वतीय नाम स्मरणरूप, त्रितीय ध्यानरूप, इन तीन साधनों के विना, परम कल्याणरूप मोक्ष की प्राप्ति अतीव दुर्लभ है। "मन मोदक नहिं भूख बुझाई" इस न्यायानुसार कर्तव्य से ही, सच्छास्त्रों में व्यासादि मुनीश्वरों ने विविध स्थलों पर सविस्तार वर्णन किया है, अतः भगवत् नाम स्मरणादि से ही परम पद की प्राप्ति है। तथापि इदानीं काल के नवीन मतावलम्बी शास्त्राशय शून्य स्व पंडित मन्य, ईश्वरावतारोपासनादि मोक्ष के साधनों से अत्यंत दूर भागते हैं। जो-कि-ईश्वरावतार इतना शब्द श्रवण मात्र से ही चौंक पड़ते हैं, और सहसा कह देते हैं। कि-ईश्वर का अवतार नहीं हो सके है। यदि तुम पुराणों के प्रमाणों से अवतार सिद्ध करो, तो हम पुराण मानते ही नहीं हैं, क्योंकि-पुराण तो पोपजी का गप्प है। केवल वेद को ही प्रमाण हम मानते हैं। ऐसे विचार कुशल पुरुषों का पुराण प्रमाण्य नहीं मानना, प्रायः स्वभाव सिद्धही है। क्योंकि-पुराणों को प्रमाणीक मानें, तब पुराण तो राम कृष्णादि को भगवदवतारत्व के निरूपण में अग्रणी ही हैं।

फिर तो अवतार विषयक शंका का अवकाश ही नहीं हो सकता इसलिये ऐसे आस्तिक मन्य प्रथम से ही पुराणों को तिलाञ्जली दे बैठते हैं। परञ्च-राम कृष्णादि अवतारों के विषय अनेक प्रश्न पुराणों के आधार को लेकर ही करते हैं। कि-रामजी सीता के वियोग से वन में शोक करते भये, और कृष्णजी ऊखलादि से बांधे गये इत्यादि शंकायें करते हैं। यदि उनसे पूछा जाय, कि-पुराण तो आप मानते नही, और श्रीरामचन्द्र जी का सीता के वियोग से विकल होना, तथा श्रीकृष्णजी का ऊखलादि से बांधा जाना यह वेद में कहां लिखा है। यदि इस विषय में पुराण का वाक्य कहो, तो उसको तो तुम प्रथम ही अप्रमाण मान चुके हो, यदि कहो कि-किसी अंश में पुराणों को प्रमाण मानते हैं, तो एकही ग्रन्थ को किसी अंश से प्रमाण मानना, तथा किसी अंश विषे नहीं, यह विचार-सत्य परिपाट के अत्यंत विरुद्ध, तथा विद्वानों के अतीव हास्यास्पद है।

दूसरी बात यह है, कि-ईश्वरावतार यह व्याकरण से असिद्ध है, वा इसका अर्थ ईश्वर की ईश्वरता में हानी कारक है। वा किसी व्यक्ति में सम्भव नहीं है। इसका विवेचन यह है, कि व्याकरण से तो असिद्ध है ही नहीं। परिशेष जिस अर्थ से ईश्वर की ईश्वरता की हानी नहीं हो, और किसी चमत्कारी व्यक्ति में सम्भव भी हो, सो अर्थ स्वीकार करना चाहिये। क्यों-कि-व्याकरण से एक पदके अनेक अर्थ होते हैं, जो अर्थ वेद विरुद्ध नही होय, सो अर्थ माननीय है। पदका निषेध करना उचित नहीं।

तीसरा-यदि कोई कहे-कि-अवतार का अर्थ जन्म है, सो ईश्वर का जन्म कहना वेद विरुद्ध है, इस कारण से ईश्वरा-

वतार पद को स्वीकार नहीं करते । सो ऐसा अर्थ मानना आपकी भूल है, आप लोगों को इस पद के अर्थ का निश्चय ही नहीं है। इस वास्ते इस "अवतार-मीमांसा" ग्रन्थ में ईश्वरावतार पदके अनेक अर्थ दिखाये हैं, वेद विरुद्ध अर्थों का त्याग करके उचित अर्थ के ग्रहण से शास्त्र प्रसिद्ध ईश्वरावतार सिद्ध हो सकता है, तात्पर्य यह है, कि-जो कोई ईश्वरावतार पद का वेद विरुद्ध अर्थ करे, उसका खण्डन करना चाहिये, किन्तु ईश्वरावतार का खण्डन करना योग्य नहीं है । जैसे दयानंद पद के अनेक अर्थ हो सकते हैं, परंतु आर्य लोग अयोग्यार्थ का त्याग करके, योग्य अर्थ के ही ग्रहण से दयानंद पदको स्वीकार करते हैं। यह नहीं कि-अयोग्य अर्थ को श्रवण करके, स्वामि दयानंद जी को त्याग दें। इसी प्रकार अवतार विषयक जानना योग्य है ।

हम आशा रखते हैं, कि-श्री स्वामी काष्णिजी निर्मित अवतार मीमांसा इस ग्रंथ के प्रचलित होने से, अवतार विषयक तो सनातनी तथा आर्य समाजादिकों का परस्पर विरोध नहीं रहेगा। और तैसे ही हमारे नवयुवक, शास्त्र विज्ञान शून्य भी, आस्तिकाभासों के उपदेशों को श्रवण कर, ईश्वरोपासनादि स्वधर्म से पतित हुऐ भी, पुनः इस ग्रंथ के सम्यक अवलोकन से, नास्तिकों के फंदे से छूटकर, ईश्वरावतारोपासनादि स्वधर्म में आरूढ़ होकर, भगवद्भक्ति द्वारा जन्म मरण रूप संसार चक्र से छूटकर, अवश्य ही परमानन्द रूप मोक्ष पद को प्राप्त होंगे ।

किञ्च-बहुत से पण्डित भी "कार्ष्णि" इस शब्द को सुनते

सो उन महात्माओं के भ्रम निवृत्त्यर्थ, पाणिनि सूत्र, पुराण, इतिहास, कोशादि सद्ग्रंथों के प्रमाणों से कार्ष्णि "शब्द की सिद्धि भी इसमें दिखाई गई है" आशा है, कि हंसवत सार ग्राहक विज्ञजन प्रेम पूर्वक इसको अवलोकन कर इसके उद्देश्य को, तथा ग्रन्थकर्त्ता के आयास को सफल करेंगे।

॥ इत्यलं विज्ञेषु ॥

भवदीय—कृपाभिलाषी,

कार्ष्णि हरिनामदास, भिक्षु।



विज्ञापनम् ।

भो भोः परमेश्वरा वतारो पासका भवतां वरिष्ठे हृत्त्रिविष्टपे विशद विस्तृत यशश्छायो, विविध विषय सुख कुसुम निकायो, यम नियमादि योगाङ्ग दलः, खलैन्द्रिय विषय वैतृष्ण्य वैराग्य विज्ञान फलः, परमोदार परमेश्वरा वतारो पासन कल्पतरुरभूत। तान्त्विदानीं तनानामास्तिकता छद्मना छन्न नास्तिकानां दुरुक्ति परुष परशु प्रहार च्छिन्न मवलोक्य। अनेन नाना निगमागम पुराण प्रमाण लक्षण लक्षितावतार–मीमांसा सुधाऽऽसारेण पुनः प्ररोढु महं कृतोद्यमोऽभव मतो भवद्भि र्महद्भि श्श्रुति स्मृति हृद्गतेन स नगो रोढव्यो येन मदीयायास साफल्यं स्यात् ॥ किञ्च–यथा सजल जलदो दैवै स्स्व शक्त्या सम्पादितोपि, योगं विना न वर्षति ॥ एवं मया भगवद्भक्त्या स्व शक्त्या स सुधाऽऽसार स्सम्पादितोपि, परञ्च ग्रन्थ मुद्रण योगेन विना सर्व सुलभो न भविष्यतीतिमत्वा ये स्स्व द्रव्य व्ययेन मुद्रापयित्वा सर्व सुलभः कृत स्तेहि भवतां धन्यवादास्पदतां यान्तु शमस्तु । ओमिति ॥

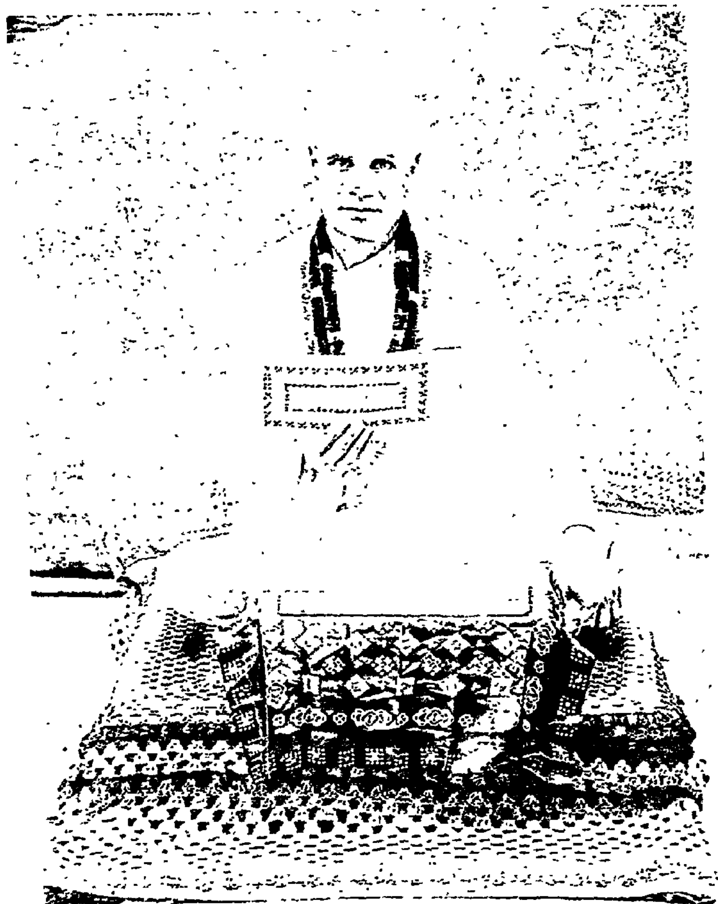
भवदीय–

कार्ष्णि गोपाल दास–चेतन देवाश्रम्–

मूल विज्ञापन की भाषा।

हे ईश्वरावतारोपासक सज्जन पुरुषो ! आप के सुन्दर हृदय रूपी स्वर्ग में, परम उदार परमेश्वर के अवतारों की, उपासना रूपी कल्प वृक्ष उत्पन्न हुआ है, जिस में निर्मल विस्तृत भगवद्गुणानुवाद ही छाया है। अनेक प्रकार के विषय सुख ही कुसुम समुदाय हैं, यम (अहिंसा १ सत्य २ अस्तेय ३ ब्रह्मचर्य्य ४ अपरिग्रह ५) नियम (शौच १ संतोष २ तप ३ स्वाध्याय ४ ईश्वर प्रणिधान ५) यह योग के अङ्ग ही पत्र हैं, और दुष्ट इन्द्रियोंके विषयों की तृष्णा निवृत्ति पूर्वक ज्ञान-और वैराग्य का होना ही फल है। उस कल्प वृक्ष को मैं आज कलके आस्तिकता के कपट से ढके हुए नास्तिकों के दुष्ट वाणी रूप तीक्ष्ण कुठारों से कटा हुआ देखकर, इस अनेक वेद, शास्त्र, पुराणों के प्रमाण और लक्षणों से युक्त, अवतार मीमांसा रूपी सुधासार की वृष्टि से, पुनः अङ्कुरित करने को उद्यत हुआ हूं, इससे आप जैसे महान्पुरुषों की कान रूपी अञ्जली से, उस मीमांसा रूपी सुधासार को, हृदय रूपी आल वाल में सींच कर, उस वृक्षका पोषण करना चाहिये, जिससे मेरे प्रयास की सफलता हो। दूसरे-जैसे देवतायों ने अपनी शक्ति से, मेघ को त्यार किया, परंतु वह विना योग (स्त्री पुरुष नक्षत्र का योग) के नहीं बरसता, इसी तरह मैंने सर्व शक्तिमान् भगवान् की दी हुई शक्ति से, उस अवतार-मीमांसा रूपी सुधा सार का सम्पादन किया, परंतु ग्रन्थ मुद्रण योग के विना वह सर्व को सुलभ न होगा, यह विचारकर-जिसने स्वद्रव्य खर्च करके, उसको छपवाया है; तथा सर्व को सुलभ बनाया है, वेही आप के धन्य-वाद के पात्र बने॥ शमस्तु। ओम्शिवम्। इत्यलं विशेषु-

भवदीय—





श्रीवृन्दावन विहारिणेनमः।

अवतारमीमांसा

अथ मूल मंगलाचरणम् ।

कारुण्येन वयं येषां गताः पारं भवाम्बुधेः ।
नत्वेश्वरा वतारां स्तान्नानकं गुरुमीश्वरम् ॥१॥
पर प्रेमास्पदं कृष्णं कार्ष्णीन् कृष्ण प्रियां स्तथा ।
गुरून् कार्ष्णिरहं कश्चित्प्रमाण लक्षणान्वताम् ॥२॥
कुर्वेऽवतार मीमांसां यस्यां मुह्यन्ति मानवाः ।
ये पुराणानभिज्ञाश्च वेदाशय विवर्जिताः ॥३॥

* इति विशेषकम् ।

नोट—* द्वाभ्यां युग्म मिति प्रोक्तं, त्रिभिः श्लोकैः विशेषक मितित लक्षणात् । अर्थ–दो श्लोकों में जिसका अन्वय हो उसको युग्म कहितेहैं । तैसे ही तीन श्लोकों करके जिसका अन्वय हो, उस को विशेषक कहिते हैं ।

अथ भाषा टीका कारकृत मङ्गला चरणम् ।

श्रीकृष्णं राधिका प्राणवल्लभं कमलेक्षणं, पालकं धर्म सेतूनां वंदे गोपाल बालकम् । राधां रासेश्वरीं वन्दे श्रीकृष्ण प्राण वल्लभां, यत्कृपा लेशतः कृष्णे परां भक्तिं लभेन्नरः ॥ २ ॥

अत्यंत आश्चर्य्य का विषय है, कि जिस भारत-वर्ष से यूरप अमेरिका आदि दूर दूर देशों के रहने वाले विद्वान् सहस्रों वर्ष से अध्यात्म विद्या प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे हैं । परन्तु अब पर्यन्त भी अन्त नहीं प्राप्त कर सके । और जिस भारत वर्ष के ग्रन्थों को सहस्रों बुद्धिमान् पुरुष भिन्न भिन्न भाषाओं में अनुवाद कर रहे हैं । परन्तु दर्शन शास्त्रोंके सांकेतिक शब्दों के अनुवाद के लिये प्रति रूप न पाने से न्यायादि शास्त्रों के अनुवाद में असमर्थ हैं । तथा जो भारतवर्ष धर्म का केवल एक मात्र आधार था, जहां के निवासियों की अनेक धर्म सम्बन्धी आश्चर्य्य प्रद कथायें अब तक अबाल वृद्ध वनिता के हृदय मंजूषा (पेटी) में सादर निहित है । उसी भारतवर्ष में आज एक ऐसा समय विचित्र उपस्थित हुआ है, कि जिसमें वैदिक धर्म तथा जाति भेद, आश्रम भेद, मूर्त्ति पूजा,

अवतार आदिक सभी प्रसिद्ध भारत वासियों के नित्य प्रति अनुष्ठेय विषयों पर नाना प्रकार की शंकायों का प्रादुर्भाव हो रहा है, ऐसी दुर्घटना को अवलोकन कर किस सहृदय का हृदय पुष्पन विदीर्ण होता होगा 'क्योंकि "यतो:धर्मः ततो जयः" इत्यादि प्रमाणों से, धर्मादिकों का सेवनकर्त्ता पुरुष को ही धर्मादि चतुष्टय फलकी प्राप्ति होती है, इस लिये उन नाना विषयों में से यहां केवल अवतार के विषय पर ही व्याख्यान विचार किया जाता है। और हमारा यह कथन उनके लिये है, जो भगवत्प्रेम से परिपूर्ण, और अवतार के विषय में कुछ श्रवण किया चाहिते हैं। अथवा नवयुवक आस्तिका भासो के कुछ प्रश्न सुन आय हैं, और उनकी मीमांसा सुनना चाहिते हैं। अब इसके आगे अवतार मीमांसा की भाषा टीका का प्रारम्भ करते हैं ॥

अथ आदि में "अवतार मीमांसा" ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये, तथा शिष्टाचार के अनुसार, और 'वेद की आज्ञा से भी" "तदुक्तं-सांख्य शास्त्रे, मंगला चरणं शिष्टाचारात्फल दर्शनात्श्रुतितश्चेति" तथा श्रुतिश्च-समाप्ति कामो मंगल माचरेदिति" सो मंगला चरण का करना सांख्य शास्त्र में कहा है, कि-मंगला-

चरण का करना श्रेष्ठ पुरुषों के आचार से प्रमाण है, 'और फल के भी देखने से' तथा श्रुति की आज्ञा से भी, कि-ग्रंथकी समाप्ति की कामना वाला पुरुष मङ्गला चर्ण करे। इत्यादिक प्रमाणों से श्रीकृष्णजी के अनन्य उपासक निखिल शास्त्र निष्णात कार्ष्णि कलाप शिरोवतंस महाकविवर्य्य श्रीस्वामि कार्ष्णि गोपाल दासजी, स्वेष्टदेवता का नमस्कारात्मक मङ्गला चरण को "कारुण्येनेत्यादि" विशेषक से करते हैं, अर्थात् लिखते हैं ॥ "मङ्गला चरण का अर्थ"

टी०—जिनकी कृपा से हम संसार रूपी समुद्र से पार हुए हैं, उन ईश्वर के अवतारों को, तथा श्री गुरू नानक देवजी को, और अत्यंत सर्व से श्रेष्ठ प्रेमके स्थान श्रीकृष्णजी के अनन्य उपासक श्री १०८ श्री स्वामिकार्ष्णि ज्ञानदासजी को नमस्कार करके श्री कृष्णजी के उपासक कार्ष्णि मैं गोपाल दास लक्षण, और प्रमाणों से युक्त 'अवतार मीमासां' को अर्थात् अवतार विषयक विचार को, जिसमें पुराणों के तथा वेदों के अभिप्राय को नहीं जानने वाले मोह को प्राप्त होते हैं, अर्थात् अनेक तर्क कुतर्कों कर विक्षिप्त चित्त होते हैं, उनके लिये करता हूं। अब इस ग्रंथ के विषयादिक अनुबन्ध चारि निरूपण करते हैं, तात्पर्य

यह है, कि—विषय १ प्रयोजन २ अधिकारि ३ सम्बन्ध ४ यह चारि अनुवन्ध ही विवेकी पुरुषों की ग्रन्थ विषय प्रवृत्ति के हेतु होते हैं, अर्थात् पूर्वोक्त अनुबन्धों को जान के ही बुद्धिमान् पुरुष ग्रंथ विषे प्रवृत हो सके हैं। या कारण से ही ग्रंथ कारने 'अवतार—मीमांसा' इस वाक्य करके सूचन करे हुए अनुबन्ध इहां स्पष्ट करके निरूपण करते हैं। अर्थात् अवतार विषयक विचार करना ही ग्रंथ का विषय है। और तिस विचार से अवतार विषयक संदेह निवृत्ति पूर्वक श्रीकृष्ण जी की उपासनासे परम कल्यान की प्राप्ति प्रयोजन है। तिस परम कल्यान की इच्छा वाले जिज्ञासू पुरुष, गुरु भक्ति संयुक्त ब्रह्म श्रोत्रिय[1] ब्रह्मनिष्ठ[2] गुरुके द्वारा पुराण तथा वेद के आशय को जानने वाला इस ग्रंथ का अधिकारी है। और ग्रन्थ का तथा विषय का परस्पर प्रतिपाद्य प्रतिपादिक भाव सम्बन्ध है। अर्थात् ग्रन्थ प्रति पादिक है, और अवतार निर्णय विषय प्रति पाद्य है। और विचारका तथा फल का जन्य जनक भाव संबंध है। विचार जनक है, और तिस विचार से संदेह निवृत्तिरूपी फल जन्य है, इत्यादिक अन्य भी परस्पर प्राप्य प्रापक, कर्तृ कर्तव्य भावादि सम्बन्ध जान लेने।

(नोट) १ निवेदन है, यदि पूर्वोक्त अनुवन्धों को

---

(१) वेद शास्त्रों के ज्ञाता (२) अनुभवी ब्रह्मज्ञानी।

सम्यक अवलोकन कर ग्रन्थ विचार विषे प्रवृत्ति होंगे तो,शीघ्र ही ग्रन्थ कर्त्ता के आशय को समझ जावेंगे।

२ अवतार विषयक अनेक पूर्व पक्षियों ने विविध प्रकार से शंकायें की हैं और तिन सर्व शंकाओं का समाधान अन्त में भिन्न २ किया गया है, इस लिये शंकाओं को अच्छी तरह से समझ कर समाधान समझने विषे प्रवृत्त होवें, ताकि—अवतार—विषयक अन्त में सन्देह न रहे।

मू०—ननु "यः सर्वज्ञः सर्व विद्यस्य ज्ञान मयं तपः" मु० उ० मं० १॥ "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" तै० उ० ब्र० व० ॥ "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यान्तरो ह्यजः" मु० उ० ख० १ मं०२॥ क्लेशकर्म विपाकाशयै रपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः" यो०पा० १॥ "जन्माद्यस्ययतः" ब्र०सू० २॥ इत्यादि श्रुति शास्त्र प्रति पादित ईश्वरो भवतु। सत्सम्प्रदायाचार्य्यः श्रीगुरु नानकोप्यस्तुच। तत्त्वोपदृष्टारो गुरवोऽपिसन्तुच। लावण्यैकधामा, ब्रजवनिता व्यूह हृदयललामम् पराजित कोटि कमनीय कामः" सकल कल्याण

गुण ग्रामः' केकिं कण्ठाभिरामः' सर्वध्यातृ धी वृत्त्येक विश्रामः' कौवेर्य यमलार्जुन मोक्षार्थ धृतोदरदामा। नवातसी प्रसूनसन्निभश्यामः' परितिरस्कृत त्रैलोक्य निखिलवाम स्त्वेवंविधः श्रीकृष्णोऽपिश्रूयतेच । कार्ष्णीस्तुत्वां पश्चात्प्रक्ष्यामि । परञ्चेश्वरावताराः कति, कतिधा, के' किंप्रयोजनं' किंलक्षणञ्च तेषां, तत्रकिं प्रमाणञ्च, यतोलक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि र्भवतीति ।

टी०—साधारणतः अवतार विषय में प्रश्न ये होते हैं क्रमशः इनी की विवेचना से हमारा उद्देश्य साधना होगा ।

"जो परमात्मा समान्य[1] विशेष[2] रूप करके बुद्धि आदिक सर्व क्षेत्र का जानने वाला है" और जिस अक्षर रूप परमात्मा का रचे हुए सर्व पदार्थोंका ज्ञान मय (ज्ञान का विकार ही सर्वज्ञता रूप) तप है; मु० उ० खं० १ मं० ९ ॥ "त्रिकाला वाध्य (नाश रहित) ज्ञान स्वरूप (चेतन स्वरूप) देश, काल. वस्तु, परि-

१ समष्टि रूप माया नामक उपाधि सामान्य कहिये है। २ व्यष्टि रूप अविद्या नामक उपाधि विशेष कहिये है।

च्छेद (अन्त) रहित सर्व व्यापी ब्रह्म है, तै. उ. ब्र. व" और ब्रह्म की अनंता अन्य शास्त्र विषे भी कहा है।"न व्यापित्वाद्देशतोऽतो नित्यत्वान्नापि कालतः ॥ न वस्तुतोपि सार्वात्म्यादा नंत्यं ब्रह्मणित्रिधा, अर्थ-सर्व देश विषे व्यापक होने से, यातै ब्रह्मका देश ते भी अंत नहीं, और नित्य होने से काल से भी अन्त नहीं, और सर्व का आत्मा रूप होने से वस्तु कृत भी अन्त नहीं है, इस रीति से ब्रह्म विषे तीन प्रकार का अनंत पणा है। जो दिव्य (स्वयं जोति रूप प्रकाशमान अलौकिक है,) अमूर्त्तः (सर्व मूर्त्तिन से रहित वा नियत्त मूर्त्ति से रहित है) पुरुष (सर्वत्र परिपूर्ण वा शरीर रूपी पुरीन विषे रहता है) ऐसा दिव्य और अमूर्त्ति (आकार रहत) जो पुरुष है सो बाहिर[1] और भीतर सर्वत्र विद्यमान् है' और (अजन्मा जन्म रहित) है, अर्थात् वह अजन्मा दिव्य प्रकाशमान् आलौकिक सर्वत्र पूर्ण पुरुष है ॥ मु० उ० खं० १ मं० २ ॥ और योग सूत्र में भी कहा कि-जो " क्लेश कर्मविपाकाशयै रपरा मृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः " अर्थ क्लेश १ कर्म २ विपाक ३ आशय ४ इन चारों के संबन्ध से रहित जो पुरुष विशेष है ताका नाम ईश्वर है ॥ तहां प्रथम क्लेश-अविद्य १

---

१ देह की अपेक्षा से जो बाहिर और भीतर रूप देश प्रसिद्ध है

अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ इस भेद कर के पांच प्रकार का होता है ॥ कार्य और कारण रूप से अविद्या दो प्रकार की हैं। देहादिकों विषे आत्मत्वादिक बुद्धि रूप भ्रान्ति ज्ञान है, तिसका नाम कार्य अविद्या है। और मूलाविद्या का नाम कारण अविद्या है ॥ अहंकार का कारण रूप जो सूक्ष्मावस्था है, तिसका नाम 'अस्मिता' है। इसी अस्मिता को 'सांख्य मत वाले' तथा योग मत वाले महत्तत्त्व कहते हैं। और वेदान्त शास्त्र विषे अस्मिता को सामान्य अहंकार कथन करते हैं। यह प्रिय वस्तु है मेरे को प्राप्त हो, इसका नाम राग है। और क्रोध का नाम द्वेष है। तथा अहंता ममता रूप से ग्रहण किये जे देहादिक पदार्थ हैं, तिनों के त्याग को नहीं सहन करना इसका नाम अभिनिवेश है ॥ (कर्म) शुक्ल १ कृष्ण २ मिश्र ३ इस भेद करके तीन प्रकार के हैं। तहां शास्त्र विहित पुण्य कर्म का नाम शुक्ल कर्म है। शास्त्र निषिद्ध पाप कर्म का नाम कृष्ण कर्म है। पुण्य पाप दोनों का नाम मिश्र कर्म है ॥ यह तीन तरह का कर्म तो अयोगी पुरुषों का होता है। और योगी पुरुषों का तो अशुक्ल कृष्ण यह चतुर्थ कर्म होता है। यह उक्त अर्थ पतंजलि भगवान ने "कर्माशुक्ल कृष्णं योगिन स्त्रि

विधनितरेषाम्" इस सूत्रकर के कहा है ॥ (विपाक) कर्मों के फल का नाम है। सो फल जाति १ आयुष २ भोग ३ इस भेद से तीन तरह का है। और कर्म फल के भोग जन्य जो संस्कार रूप वासना है। तिस का नाम आशय है। इस प्रकार क्लेश, कर्म, विपाक, आशय, इन चारों कर युक्तजीव होता है। और ईश्वर तो तिन चारों करके असंबन्ध अर्थात् रहित होता है । तथा सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् स्वतंत्र होता है ॥ इति ॥ यो. पा. १सू. और ब्रह्मसूत्र में भी कहा है, कि-जिस सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् कारण तें इस आकाशादिक दृश्यमान् प्रपंच के जन्म, स्थित, लय, होता है, सोई ब्रह्म है। इत्यादिक वेद शास्त्र प्रतिपादित ईश्वर को, तथा श्रेष्ठ सम्प्रदाय के आचार्य श्री गुरु नानकदेवजी को, और जो अत्यंत सुन्दर स्वरूप युक्त, तथा गोपियों के हृदय को आनन्दित करने वाले, और अपनी सुन्दरता से करोड़ों कामदेवों को पराजित करने वाले, तथा सम्पूर्ण कल्यान दायक गुणों के आश्रय, मयूर ग्रीवा की तरह श्याम सुन्दर स्वरूप, ध्यान करने वाले योगीजनों के बुद्धि की वृत्तियों के विश्राम देने वाले, कुबेर के पुत्र यमलार्जुन (नल कूबर) को मोक्ष के लिये रस्सी से कमर को बंधाने वाले, नवीन अतसी (अलसी) के पुष्प

सदृश श्याम स्वरूप, तथा त्रिलोकी के सम्पूर्ण स्त्री वर्ग को मोहित करने वाले, इत्यादिक विशेषण संयुक्त श्रीकृष्णचन्द्र जी को भी हम इस वक्त अवतार मान लेते हैं। और कार्ष्णि शब्द की व्याख्या को हम पीछे से पुछेंगे। परन्तु पहले इन प्रश्नों का तो उत्तर दो, कि- (१) ईश्वर के अवतार कितने हैं (२) और कितने प्रकार के है ॥ (३) कौन से हैं ॥ (४) सर्व शक्ति मान ईश्वर को अवतार लेने की क्या आवश्यकता है अर्थात् किस निमित को लेकर अवतार धारण करते हैं (५) और अवतार का [1]लक्षण क्या है ॥ (६) तथा अवतार सिद्धि में [2]प्रमाण क्या है क्योंकि-लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है, केवल कथन मात्र से ही सिद्धि नहीं हो सक्ता है। इसलिये अवतार विषयक लक्षण और प्रमाणों को स्पष्ट रीति से कथन करें ॥

मू०—ईश्वरस्य यद्देहाकारेणावतरणं प्रादुर्भावो

१—समाना समान जातीय व्यवच्छेदो लक्षणार्थः। अर्थ—समान और असमान जाती के भेद को भिन्न करके दिखलावे, उसको लक्षण कहते ॥। २ प्रमायाः करणं प्रमाणम् " अर्थ—प्रमा नाम यथार्थ ज्ञान का जो असाधारण कारण अर्थात्—जिस साधन से पदार्थ का यथार्थ ज्ञान हो, उसको प्रमाण कहते हैं ॥

भवेत् स ईश्वरावतारः । एवं हि सुसिद्धान्तो-
त्तमादीनां कर्तारः प्रियदास प्रभृतयः केचि-
द्वैष्णवा मन्यन्ते' यथोदकं हिहिमतां प्राप्नोति,
तत्र घनी भूत हिमपिण्डे न काश्चिद्धेयांशाऽन्त-
र्बहिः' सर्वं सलिलमेव । एवं निराकार ईश्वरो
हि श्रीकृष्ण व्यक्ति भावं प्राप्तोऽतास्मिन्मयी
श्रीकृष्ण व्यक्तिर्नतु भौतिकी' नचमायिकी'
देहि देह विभाग स्तत्र नास्ति । एतदाभिप्राये-
णैव सूतेनोक्तम् । "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"
भा० स्क० १ अ० ३ श्लो० २८॥

टी०—इस प्रकार पूर्व पक्षि के प्रश्नों को श्रवण कर के बीच में एक देशी स्वमत के अनुसार समाधान करता है-ईश्वर का जो देहके आकार से प्रादुर्भाव (प्रकट) होना है, वही ईश्वर का अवतार है। इस प्रकार सुसिद्धान्तोत्तमादि के कर्त्ता प्रिय दास आदिक कोई कोई वैष्णव मानते हैं । उदाहरण यह देते हैं । जैसे जल जम के वर्फ के रूप को धारण करता है, उस वर्फ के पिण्ड में जल से अतिरिक्त भीतर बाहिर और कोई त्याज्य अंश वाली वस्तु नहीं है, किन्तु भीतर

बाहिर सब जगह जल ही है । इसी तरह निराकार ईश्वर ही श्रीकृष्ण स्वरूप को धारण करता है । इस लिये श्री कृष्ण जी का स्वरूप चिन्मय है अथात् सच्चिदानन्द मय श्री कृष्ण जी हैं, और श्री कृष्ण जी में भौतिकी पंच भूतों का कार्य पणा, अथवा मायिकी माया का कार्य पणा नहीं है । और हमारी तरह तिस में देह स्थूलादि देह, तथा देही, देहाभिमानी जीव पणा इत्यादिक विभाग भेद भी नहीं हैं। किन्तु शुद्ध चिन्मय स्वरूप हैं ॥ इसी अभिप्राय से ही सूत जी ने श्रीमद्भागवत् प्रथम स्कन्ध में कहा है कि "श्री कृष्ण जी तो स्वयं सच्चिदानंद स्वरूप भगवान् ही अवतीर्ण अथात् प्रकट हुए हैं " भा० १।३। २८ ॥

सू०—इतिचेद्गोलक्षण एकशफवत्त्ववद सम्भव दोषं दूषित मिदंलक्षणम् । "यज्जायते तदेवास्ति वर्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते नश्यतीतिच" अजस्य परिपूर्णस्य सर्वाश्रयस्य परमेश्वरस्य परिणामो न सम्भाव्यते " । "जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः" भा० स्क० ७ अ० ७ श्लो० २८ इत्यादि शास्त्र विरुद्धत्वाच्च नह्याकाशस्य मूर्त्तिः

क्वचिद् दृश्यते' यथा रक्तवर्णेन रक्तं वस्त्रं रक्त मुच्युत' एवं पारमेश्वर गुणाविष्टत्वाच्छ्री कृष्णः स्वयं परमेश्वरः सूतेन प्रोक्तो नतु परमेश्वर विकारे तस्य तात्पर्यम् ॥ १ ॥

टी०—इस एक देशी के समाधान में पूर्व पक्षी की शंका—हे एक देशी! यदि तुम ऐसा लक्षण अवतार का करोगे, तो यह आपका लक्षण असम्भव दोष से दूषित है। (लक्ष्यमात्रावृतित्वमसंभवः) जो लक्षण लक्ष्य मात्र में भी न रहे, उसको असम्भव दोष कहते हैं, जैसे कोई " एक खुर वाली गौ है " यह लक्षण गौ का बतलावे, तो यह लक्षण असम्भव दोष कर के दूषित है, क्योंकि गौ का एक सफवत्व (एक खुर) कभी नहीं हो सकता, जहां तक गाय देखने में आतीं हैं दो खुर वाली ही देखने में आती है, इसी तरह सर्व व्यापक, अजन्मा जन्म रहित, सर्वाधार, परमेश्वर का देहि देह विभाग सहित वर्फ के समान परिणाम अर्थात् रूपान्तर का मानना सर्वथा असम्भव है। क्यों कि जो " जन्म लेता है, उसी का अस्तित्व है, अर्थात् वही व्यवहारिक सत्ता को प्राप्त होता है, और सोई ही वृद्धि पाता है, और वही परिणाम रूपान्तर को

प्राप्त होता है, और वही घटता है, और सोई नाश को प्राप्त होता है" तात्पर्य यह है, जो जन्मता है उसी में ही पूर्वोक्त षड विकार माने जाते हैं। परन्तु परमात्मा ऐसा नहीं है। इस लिए श्री मद्भागवत् सप्तम स्कन्ध में भी कहा है, कि-"जन्मादिक षडभाव (६ विकार) देह के ही दिखाई देते हैं, आत्मा के नहीं" भा० ७।७।२८॥ इत्यादिक शास्त्र विरुद्ध होने से परमेश्वर का परिणाम को प्राप्त होना सर्वथा असंभव है। दूसरी बात यह है, कि-निर्विकार परमात्मा की आकाश के समान मूर्त्ति कहीं भी दिखाई देती नहीं' इस लिये जैसे लाल रंग से रंगे गये वस्त्र को लाल कहने के सामान, तैसे हीं, परमेश्वर के गुणों सहित होने से श्री कृष्ण जी को सूतजी ने स्वयं परमेश्वरावतार कहा है, और इसी अर्थ में ही उनका अभिप्राय है। और निर्गुण निराकार ईश्वर का परिणाम मानने में नहीं है ॥ १ ॥ (यहां पर्यंत एक देशी के समाधान को पूर्व पक्षी नें खण्डन किया है)

मू०—ईश्वरस्यावतरणं यस्मिन्देहे प्रवेशः स्यात् सईश्वरावतार इति।

टी०—अब दूसरा एक देशी स्वमत के अनुसार अवतार का लक्षण करता है, कि—जिस देह में ईश्वर

का अवतरण अर्थात्-प्रवेश हो वह ईश्वरावतार है ॥ इति ॥

मू०-चेदेकांशस्य प्रवेशः, किं सर्वस्य' द्वितीये पूर्ववदसम्भव दोपो, नहि सर्वस्य व्योम्न एकस्मिन्कुम्भे प्रवेशो दृश्यते'पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' ऋ० पु० सू० ॥ "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न मेकांशेनस्थितोजगत्" गी० अ० १० श्लो० ४२॥ इत्यादि श्रुति स्मृति विरोधात्। प्रथम पक्षे-"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" तै० उ० मं० ६॥"सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः" श्व० उ० अ० ४ मं० १७॥ "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनातिष्ठति" गी० अ० १८ श्लो० ६१॥ इत्यादि श्रुति स्मृतिषु सर्व देहेष्वेकांशेन तस्य प्रवेशश्श्रूयतेऽतोगोलक्षणे शृङ्गवत्त्ववदत्राति-व्याप्ति दोषः ॥ २ ॥

टी०-अब पूर्व पक्षि पूर्वोक्त अवतार लक्षण में भी दोष बतलाता है, यदि ऐसा अवतार का लक्षण करें,

तो उसमें यह शंका उत्पन्न होती है, कि ईश्वर का एकांश से देह में प्रवेश है, अथवा सर्वांश से, यदि द्वितीय पक्षमाने, तो द्वितीय पक्ष प्रथम की न्याईं असम्भव दोष करके दूषित है। क्योंकि—ऋग्वेद में कहा है, कि "त्रिकाल में होने वाले प्राणी मात्र इस ब्रह्म के चतुर्थांश में स्थित है, और इस पर ब्रह्म का अविशिष्ट त्रिपाद स्वरूप अमृत है अर्थात् विनाश रहित प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित है" ऋ० पु० सू॥ और गीता में भगवान् श्री कृष्ण जी ने अर्जुन के प्रति कहा है, कि—"मैं इस संपूर्ण जगत् को एकांश से धारण करके स्थित हूं अर्थात् यह सम्पूर्ण दृश्यमान् प्रपंच मैं परमात्मा के एकांश में कल्पित है" गी०अ० १० श्लो० ४२ ॥ इत्यादि श्रुति तथा स्मृति के विरोध से सर्व व्यापक परमात्मा का, एक घड़े में सम्पूर्ण आकाश के प्रवेश के समान, एक देह में सर्वांश से प्रवेश होना असम्भव है। और प्रथम पक्ष में यदि ईश्वर के एकांश का प्रवेश मानों तो इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष आता है। क्योंकि श्रुति में कहा है "सो परमात्म देव इस जगत् कूं रचके आप ही तिस जगत् विषे प्रवेश करता भया" तै०उ०म० ६ ॥ तैसे अन्य श्वेताश्वतुर उपनिषद् में भी कहा है कि—"परमात्मा सर्वदा प्राणियों के हृदय में रहता है" श्वे० उ० अ० ४ म०

१७ ॥ और गीता में अर्जुन के प्रति भगवान् ने कहा है, कि हे—अर्जुन ? ईश्वर सर्व भूतों के अर्थात् सर्व प्राणी मात्र के हृदय स्थान में विराजमान है " गी० अ० १८।६१ ॥ इत्यादि श्रुति स्मृत्यों से प्रतीत होता है कि—सर्व प्राणियों में एकांश से परमेश्वर का प्रवेश है जैसे " शृंगित्वम् गौर्लक्षणम् " अर्थ—सींग वाली गौ है, इस प्रकार गौ का लक्षण कहने पर, गौ से अन्य भैंस बकरी आदि को भी सींग वाली होने से, यह तुम्हारा लक्षण उनमें चला जायगा, तो उनको भी गाय कहना पड़ेगा, यह अति व्याप्ति कालक्षण है कि लक्ष्य के अतिरिक्त दूसरी वस्तु में (अलक्ष्य विषे) भी लक्षण घटित (प्राप्त) हो जाय, उसका नाम अति व्याप्ति है। इस लिये यह भी अवतार का लक्षण समीचीन नहीं है ॥ २ ॥

मू०—ईश्वरस्यावतरणमेकांशेनयास्मिद्दिव्ये देहे प्रविशःसईश्वरावतारः"जन्मकर्मचमे दिव्यम् " गी० अ० ४ श्लो० १ ॥ इति भगवद्वचनादत्र नैवोक्त दोषौ, दिव्यत्वं—नामालौकिकत्वं, तदुक्तं देवक्या श्रीकृष्णं लक्षीकृत्य " उपसंहर विश्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम् " भा०

स्क० १० अ० ३ श्लो०–३०॥ सजलजलद संकाश श्यामलत्वंदेहस्यालौकिकत्वं लोकए-तादृशस्यादृष्ट श्रुतत्वात् । "पीताम्बरं सान्द्र पयोद सौभगम्" भा० स्क० १० अ० ३ श्लो० ९ इत्यत्र श्रीकृष्ण श्यामलता निरूपितत्वादिति ।

टी० इस तरह पूर्वोक्त असम्भव तथा अतिव्याप्ति दोष के आने पर दूसरा एक देशी अपने लक्षण में प्रति शोधन करता है । ईश्वर का 'अवतरणम्' नाम जिस दिव्य देहे में एकांश से जो प्रवेश है वह ईश्वरा-वतार है । क्योंकि भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्णजी ने स्वयं कहा है "मैं ईश्वर के जन्म तथा कर्म दिव्य हैं" गी० ४ । ९ ॥ इत्यादि गीतोक्त वचन से ईश्वर के जन्म कर्म दिव्य माने हैं, इसी से यहां पर पूर्वोक्त असम्भव, तथा अतिव्याप्ति दोष लक्षण में नहीं आ सकता । अब विचार करना इस बात का अवशिष्ट बाकी है, कि कौनसा देह दिव्य है, सो दिव्य अलौकिक को कहते हैं, इस लिये भागवत् दसम स्कन्ध तृतीये अध्याय में देवकी ने श्रीकृष्णजी को उद्देश करके कहा है, कि "हे विश्वात्मन् ! आप अपने इस अलौ-किक रूप को छिपालो" भा० १०।३।३०॥ सजल मेघ

के समान श्याम शरीर लोक में न देखा है, और न सुना ही है। और ईश्वर के अवतार श्रीकृष्ण आदि तो, जल सहित मेघ के समान सुन्दर श्याम स्वरूप हैं, और जो श्रेष्ठ पीरे रेशम के वस्त्रों सहत हैं" भा० १० ३। ९॥ इत्यादि प्रमाणों से श्रीकृष्ण जी का स्वरूप मेघ के समान श्यामलतादि से युक्त कहा है।

मू०—चेत् कापिलत्ववद्व्याप्ति ग्रस्तामिदं लक्षणं तथाहि " ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः। दुग्धे मा मौषधी विंप्रिस्तेनायं स उशात्तमः" भा० स्क-१ अ० ३ श्लो० १४॥ इतिअवतार गणनायां पृथुमवगणय्य॥ "प्रांशुः पीनायत भुजो गौरः कञ्जारूणेक्षणः" भा० स्क० ४ अ० २१ श्लो० १५॥ अत्र स गौर वर्णोदर्शितः। तथाच "एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी। रामकृष्णाविंति भुवो भगवानहरद्भरम्" भा० स्क० १ अ० ३ श्लो० २३॥ अत्र श्रीबलदेवो भगवदवतारः प्रोक्तोऽमुष्य शुक्ल वर्णत्वं तु प्रसिद्धम्॥

टी०—इस तरह लक्षण का प्रति शोधन करने में अर्थात् पूर्वोक्त दोषों के हटाने पर भी पुनः पूर्व पक्षी इस लक्षण को दूषित करता है। यदि ईश्वरावतार का श्यामवर्ण लक्षण आपको अभीष्ट है, तो यह लक्षण अव्याप्ति दोष करके ग्रस्त है। क्योंकि—तैसे ही श्री मद्भागवत् के प्रथम स्कन्ध में पृथु और बलदेवजी भी ईश्वर के अवतार माने गये हैं। यथा "हे शौनकादिको ! अतिशय करके ऋषियों कर प्रार्थना किये हुए भगवान् नवमों पृथु राजा के शरीर को धारण करते भये। तिस पृथु रूप अवतार करके इस पृथ्वी से औषिधियों को दुहते भये, अर्थात् प्रजा पालन उपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओं को प्रकट करते भये" भा० १।३।१४॥ तैसे ही चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा है कि "ऊंची और पुष्ट अर्थात् बलशाली लम्बी भुजा जिनकी, और गौर वर्ण तथा कमल के समान सुरखाई वाले नेत्र जिनके" भा० ४।२१।१५॥ इसमें पृथु अवतार का गौर वर्ण कथन फिया है। और तैसे बलदेवजी को भी अवतार कथन किया है, यथा "उनीसवें और बीसवें अवतार में भगवान् वृष्णि वंश में राम तथा कृष्ण स्वरूप को धारण करके भूमि के भार को दूर करते भये हैं". भा० १।३।२३॥ और बलदेवजी का

गौर वर्ण तो सर्वत्र सुप्रसिद्ध ही है। आगे ऋषभदेव को भी भगवतावतार कहा है, सो श्रवण कीजिये॥

मू०—किञ्च। "बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त? भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रिय चिकीर्षया तद वरोधायने मेरु देव्यां धर्मान्दर्शयितुं कामो वातरशनानां श्रमणाना मृषीणामूर्ध्व मन्थिनां शुक्लया तनु वाऽवततार" भा० स्क० ५ अ० ३ श्लो० २० ॥ अत्रर्षभावतारस्यापि शुक्ल वर्ण उदीरित इति ॥ ३ ॥

टी०—और भागवत पंचम स्कंध के अनुसार ऋषभावतार का भी शुक्लवर्ण निरूपण किया गया है, जैसे "हे विष्णुदत्त—परीक्षित! तिस बर्हिषि नाम नाभि राजा के यज्ञ में, परम—श्रेष्ठ ऋषियों करके प्रसन्न किये हुए भगवान्, तिन ऊर्ध्वरेता-नैष्ठक ब्रह्मचारी तथावाताहारी और दिगम्बर तपस्वी ऋषियों के धर्म दिखाने की इच्छा कर के, और नाभि राजा के हित करने की इच्छा करके, तदवरोधायने—तिस नाभि राजा के अन्तःपुर में मेरु देवी रानी के द्वारा शुद्ध सत्वात्मक शुक्ल मूर्त्ति (गौर मूर्त्ति) करके अवतार लेते भये" भा०

५।३।२०॥ इत्यादि पूर्वोक्त प्रमाणों से पृथु तथा बलदेव जी तथा ऋषभावतार गौरवर्ण होने से यह आपका लक्षण उनमें घट नहीं सकता, और पूर्व कहा अव्याप्ति दोष भी किसी प्रकार से निवृत्त नहीं हो सकता, सो अव्याप्ति दोष का लक्षण यह है कि "- क्वचिद्लक्ष्यवृत्तित्वे सति क्वचिदवृत्तित्व मव्याप्तित्वम्" जो लक्षण किसी जगा तो लक्ष्य में घटे, और किसी जगा नहीं घटे उसका नाम अव्याप्ति है। जैसे "कपिलत्व गोत्व लक्षणम्" अर्थ कपिलवर्ण युक्त गायका लक्षण है- यह कहें, तो कपिलवर्ण वाली सम गाय नहीं होती, क्योंकि-कोई श्यामवर्णवाली है, और कोई श्वेतवर्ण-वाली है, इसलिये केवल कपिला कहने मात्रसे सब गायोंको बोध नहीं होता, जैसा कि-"शृंगसास्नादिमान्" कहने से होता है। इसलिये उक्त लक्षण की नाईं केवल श्यामवर्ण युक्त ईश्वरावतार कहने से अव्याप्ति दोष सम्भव ही है ॥ ३ ॥

मू०—ननु अलौकिकत्वं चतुर्भुजत्व मेतल्लक्षण मवतारेषु प्रसिद्धं यथा श्रीकृष्णाविर्भाव समय उक्तम्

"तमद्भुतं बालक मम्बुजेक्षणं, चतुर्भुजं शङ्ख

गदार्युदायुधम् ॥ श्रीवत्स लक्ष्मंगलशोभिकौ स्तुभम्, पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम् ॥१॥ महार्ह वैदूर्य किरीट कुण्डल, त्विषा परिष्वक्त सहस्र कुन्तलम् ॥ उद्दाम काञ्च्यङ्गद कंकणादिभि, र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत् ॥ २ ॥ भा० स्क० १० अ० ३ श्लों ९ । १० ॥ तथाच "तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भवविश्व मूर्त्ते" गी. अ. ११ श्लो. ४६॥ इत्यर्जुनेनाप्युक्तमेवं बहुषूपाख्यानेषु श्रीकृष्णस्य चतुर्भुजत्वं प्रसिद्ध मितीदमप्यव्याप्तिग्रस्तं श्रीदाशरथि रौहिणेय राम व्यासादीनामीश्वरावतारत्वेनोक्तानां चतुर्भुजत्वं पुराणेष्व श्रुतत्वात् ॥ ४ ॥

टी०—अब पुनः एक देशी स्वसिद्धांत सिद्धि के लिये प्रकारान्तर से लक्षण करता है (शंका) अलौकिक का अर्थ चतुर्भुज करते हैं यह चतुर्भुज लक्षण अवतारों में प्रसिद्ध ही पुराणों द्वारा श्रवण किया जाता है, जैसे श्री कृष्णजी के प्रादुर्भाव के समय कथन किया है, जिसके कमलके समान सुन्दर नेत्र थे; और चतुर्भुजाओं के साहित्त शंख गदादिक श्रेष्ठ

आयुधों को धारण किये हुये, और श्री वत्स का चिन्ह है वक्षस्थल में, तथा गले में अथवा गले करिके शोभायमान है कौस्तुभ मणि जिनके, और पीताम्बर पहने और जल सहित मेघों के समान शोभायमान् श्याम शरीर है जिनका, और जिनके केश बहुमूल्य के वैदूर्य्य रत्नों करके जटित किरीट की और कानों के कुण्डलों की कान्ति से प्रकाशित होरहे थे, अर्थात् शोभायमान होरहे हैं। और श्रेष्ठ कांची कटि मेखला अंगद बाजुबन्द कंकणादिक भूषणों करके शोभायमान तिस अद्भुत अलौकिक बालक को वसुदेवजी देखते भये भा० स्कं० १०।३।९।१०॥ इत्यादि प्रमाणों से अलौकिक का अर्थ चतुर्भुज संभव ही है इति। पुनः पूर्व पक्षी पूर्वोक्त लक्षण में दोषारोपण करता है, यदि भागवत् दसमस्कन्ध तथा गीता एकादशाध्याय के अनुसार अलौकिक का अर्थ चतुर्भुज मान भी लें, तो भी अव्याप्ति दोष प्रथम जैसाही प्राप्त होता है, इस आपके लक्षण से कुछ विलक्षणता तो नहीं हुई, क्योंकि श्रीरामचन्द्र, बलदेव, परशुराम, व्यासादिकों को भी ईश्वरावतार कथन होने से, इनको किसी पुराण में भी चतुर्भुज नहीं माना गया है। और लोक में भी द्विभुजही प्रसिद्ध हैं, इस लिये यहभी आपका लक्षण

समीचीन नहीं है ॥ ४ ॥

मू०—अथवा अलौकिकत्व मयोनिजत्वं, यथा श्री कृष्णस्य शंख चक्र किरीट कुण्डलादिभि स्सहा विर्भावोक्त्या ऽयोनिजत्वं ध्वनितं यतो भूषणायुधैः सहितस्य योनिजत्वं नहि सम्भाव्यत उक्तञ्च देवक्यापि—

"विश्वं यदेतत्स्व तनौ निशान्ते यथा वकाशं पुरुषः परोभवान् ॥ बिभर्त्ति सोयं ममगर्भगोऽभूदहोनृलोकस्य विडम्बनंहि तत् भा० स्क० १० अ० ३ श्लो० ३१ ॥ तथा चाह वैयासकि शुकः "जयति जन निवासो देवकी जन्म वादः" भा० स्क० १० आ० ९० श्लो० ४९॥ नृसिंहादीनामयो निजत्वं स्पष्ट मेवेति

टी० अब पक्षान्तर से एक देशी स्वाभीष्ट अवतार के लक्षण को कहता है, यदि अलौकिक का अर्थ अयोनिज (योनिसेन उत्पन्न होने वाला) अवतारका लक्षण करो, क्यों कि—शंख चक्र किरीट कुण्डलादि के साथ श्रीकृष्ण जी का अवतार कहा गया है, और

भूषण आयुधों के सहित योनिज होना असम्भव है। तैसे ही श्रीकृष्ण जी के आविर्भाव समय देवकी ने भी कहा है, कि–"जो परम पुरुष परमात्मा प्रलयके समये इस सम्पूर्ण जगत् को अपने शरीर विषे संकोच राहित धारण करताहै,वही आप मेरे उदर विषे जन्म धारण करने आयेहैं, यह जो कथन है, सो केवल मनुष्यों में असम्भव रूप प्रतीत होने का है, अर्थात् अत्यंत हास्य के कराने वाला होगा, भा० स्कं० १. अ० ३ श्लो० ३१॥ और "देवकी विषे जन्म को धारण करने वाले, तथा सर्व मनुष्यों में है निवास जिसका एसे भगवान श्रीकृष्ण जी श्रेष्ठ यादवोंकर सेवित होते हुए जयति (उत्कृष्टता) को प्राप्त हो रहे हैं, भा० १०।९०॥४८॥

मू०–नृसिंहादीनामयोनिजत्वं स्पष्ट मेवेति चेदत्राप्य व्याप्ति र्यतो जामदग्न्यादीनामवतारत्वेनाभिमतानां शंख चक्र किरीटादिभिस्सहाविर्भाव कुत्रचिदपि नैवोक्तोऽतोजन्मसमये यावत्प्रमाणाः शिशवो भवान्ति तावत्प्रमाणा स्तन्मातृभिः प्रसूता अनुभूताश्चातो केषांचिद्योनिजत्व मप्यस्ति। नृसिंहादयस्त्व योनिजास्सन्तु

तेषां प्रादुर्भाव समये तथैवोक्तत्वात्। परञ्च मनुष्या वतारेषु तन्मातृणां गर्भ धारण प्रसवादि व्यवहारः स्फुटमेवोक्तोऽतः प्रायोयोनिज व्यवहारः ॥

टी० और नृसिंहादिक ईश्वर के अवतार अयोनिज प्रसिद्ध ही हैं। यदि इस प्रकार से भी लक्षण करो तो भी यह आपका लक्षण अव्याप्ति दोष करके पूर्वकी नाईं दूषित ही है, क्यों कि जस परशुरामादि कों ईश्वर का अवतार रूप करके स्वीकार किया है, तैसे ही परशुरामादिको शंख चक्र किरीटादि के साथ कहीं भी आविर्भाव नहीं कहा गया है। इस लिये दूसरे बालक जन्म के समये जितने प्रमाण अर्थात् आकार वाले होते हैं, उतने ही प्रमाण वाले परशुरामादि को उनकी माताओं ने जन्मा था, और देखा भी था इससे वे योनिज ही सिद्ध हैं, नृसिंहादिक तो भले ही अयोनिज रहे आवें, क्यों–कि–उन का प्रादुर्भाव (प्रकट) होना उसी तरहसे हीं पुराणों में कहा गया है, परन्तु मनुष्य अवतार परशुराम आदिकों के अवतारों में उनकी माताओं का गर्भ धारण प्रसव आदि व्यवहार स्पष्ट कहा है, इस लिये उन (परशुरा

आदि) में योनिजत्व (योनि से उत्पन्न होना) स्पष्ट व्यवहार है ।

मू०—अथवाऽवतारमात्रस्यायोनिजत्वे स्वीकृतेऽतिव्याप्ति दोष आयाति, यतो धृष्ट द्युम्न वृत्रा सुरादयो ष्ययोनिजाः समुदीरिता, स्तथाहि धृष्टद्युम्नो द्रुपदस्य राज्ञो यज्ञाग्नि कुण्डात्सरथो जात, इति महाभारते श्रूयते, तथाच श्री मद्भागवते चित्रकेतो राज्ञः पार्वती शापात्त्वष्टुरभिचाराग्नि कुण्डाद् वृत्रासुर देह जन्म कथानात् ॥ ५ ॥

टी०—अब इस अवतार के लक्षण में पूर्व पक्षी अन्य प्रकार से दोष दिखाता है, दूसरी बात यह है; कि- हे एक देशी ? यदि अवतार मात्र को ही अयोनिज तुम मानोंगे, तो धृष्टद्युम्न, वृत्रासुर आदि को भी अयोनिज होने से उनमें, भी यह आपका लक्षण अति व्याप्ति रूप हो जायगा, अर्थात् प्राप्त हो जायगा, क्योंकि महा- भारत में धृष्टद्युम्न के विषय में कहा है, कि वह द्रुपद राजा के यज्ञ कुण्ड सें ध्वजा और रथ के सहित

उत्पन्न हुआ है। तैसे ही वृत्रासुर के विषय में भागवत् में कथन किया है, कि चित्रकेतु राजा पार्वती के शाप से अभिचार यज्ञ (शत्रु विध्वंसक यज्ञ) करते हुए त्वष्टा के अग्नि कुण्ड से वृत्रासुर के रूप से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार से आपको इन धृष्ट द्युम्नादिको भी अवतार मानना पड़ेगा, और यंहें ईश्वरावतार गणना में आये नहीं हैं, इस लिये यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष करके दूषित ही हैं, इस से इस लक्षण का त्याग ही श्रेष्ठ है॥ ५ ॥

मू०—ननू अलौकिकत्व मकर्मजत्वं, यथा श्रीकृष्णा विर्भाव समये ब्रह्मादिभि रुक्तम्—"नतेऽभवस्येश भवस्य कारणम्' विनाविनोदं वततर्कया महे" भा० स्का० १० आ० २ श्लो० ३४॥ "नह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते। आतममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः" भा० स्का० ९ आ० २४ श्लो० ५७॥ इतिचेदिद मप्य व्याप्ति दोष दूषितं, तथाहि "आरब्धानेव बुभुजे भोगान् पुण्य जिहासया" भा० स्क० ४ आ० २१ श्लो० ११॥ इति पृथ्ववतारस्य

कर्मजत्वं श्रूयते ॥

टी०—पुनः एकं देशी अवतार के लक्षण में बहुत देर तक विचार कर प्रश्न करता है कि-हे पूर्व पक्षी ! पूर्व कथन किये लक्षण में, तो आपने अति व्याप्ति दोष दिखाया, परन्तु यह लक्षण निर्दोष है ' अलौकिक का अर्थ अकर्मज हम करते हैं, अर्थात् ईश्वर का प्रादुर्भाव अवतारकर्म जन्य नहीं है ॥ अर्थात् जीवों की नांई पूर्व जन्म में किये कर्मों के अनुसार ईश्वरावतार का प्रकट होना नहीं है, किन्तु स्वइच्छामय है । क्यों कि श्रीकृष्णजी के आविर्भाव समय ब्रह्मादिक देवताओं ने भी स्तुति में कहा है कि—" हे नित्य मुक्त ईश्वर ! जन्म रहित आपके जन्म का कारण, आपकी क्रीडा के अतिरिक्त और कुछ हमारी तर्क करनें में अर्थात् समझ में नहीं आता है " भा० स्क० १० । २ । ३९ ॥ तिसी प्रकार भागवत् नवम स्कन्ध में भी कहा है, कि हे राजन् ! माया के नियंता असंग, सर्वसाक्षी व्यापक परमात्मा आत्म माया अर्थात् अपनी इच्छा के विनोद विना जन्म और कर्म का कारण कुछ नहीं, कथन किया जाता है " भा० स्क० ९ । २४ । ५७ ॥ इत्यादि प्रमाणों करके अकर्म जन्य ही सिद्ध होता है । पूर्व पक्षी कहता है, कि-यदि इस तरह भी अवतार का

लक्षण मानों ? तो भी यह लक्षण अव्याप्ति दोष करके दूपित ही है। क्यों कि, तैसे ही पृथु अवतार का भागवत् नवम् स्कन्ध में कर्म जन्य बतलाया है, कि " वे पृथु राजा अपने पूर्वारब्ध कर्मों के अनुसार प्राप्त भये भोगों को भोगता था उस का भोगों का सेवन केवल पुण्य कर्मों से मुक्त होने की इच्छा से ही था " भा० स्क० ४। २१। ११ ॥ इस प्रकार पृथु अवतार कर्मज श्रवण किया है।

मू०—तथाच " तृतीय मृपि सर्गञ्च देवर्पित्व मुपेत्यसः ॥ तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः " भा० स्क० १ अ० ३ श्लो० ८ ॥ इति नारद ईश्वरा वतारेषु गणितोपि—

" अहं पुरा भवं कश्चिद्गन्धर्वउपवर्हणः ॥
नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सु सम्मतः ॥१॥
रूप पेशल माधुर्य सौगन्ध्य प्रिय दर्शनः ॥
स्त्रीणां प्रियतमोनित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥२॥
एकदा देवसत्रेतु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥
उपहूता विश्व सृग्भि र्हरि गाथोपगायने ॥३॥
अहञ्च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतोगतः ॥

ज्ञात्वा विश्व सृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥
याहि त्वं शूद्रता माशु नष्टश्रीः कृत हेलनः॥४॥
तावद्दास्या महं जज्ञे तत्रापि ब्रह्म वादिनाम् ॥
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोहं ब्रह्म पुत्रताम् ॥ ५ ॥"
भा० स्क० ७ अ० १५ श्लो० ६९।७०।७१।७२।
७३ ॥ इत्यत्र तेनैव नाना संसार गति भ्रमता
कर्मजं स्वजन्म दर्शितम् ॥ ६ ॥

टी० तैसेहि श्रीमद् भागवत्प्रथम स्कन्ध में भी कहा है, कि-"सोदेव परमात्मा ऋषि वंश में देवऋषि नारद नामका तीसरा अवतार लेकर भक्ति शास्त्र (नारद पंच रात्र) का वर्णन करता भया, जिस शास्त्र के अनुसार किये हुए कर्म से मोक्ष की इच्छा वाले अधिकारी-पुरुषों को मोक्ष की प्राप्ति होती है" भा० १।३।८॥ इस प्रकार नारद जी ईश्वरावतार गिणे गये हैं। और उन्ही नारदजी ने अपने जन्मको भागवत् सप्तम स्कन्ध में स्पष्ट कर्म जन्य बतलाया है, कि "हे राजन् ! गत महाकल्प में मैं गन्धर्वों में श्रेष्ठ उपबर्हण नामका एक गन्धर्व था। और सुन्दरता तथा वाणी की मधुरता से, और सुगन्धि के कारण मेरा

दर्शन सर्व को प्रिय था। इसी कारण से स्त्रियों को भी मैं अत्यन्त प्रिय था, इस लिये में उन स्त्रियों में अत्यन्त लम्पट होकर सदा उन्मत्त रहता था। एक दिन देवताओं के सत्र (यज्ञ) में दक्ष आदि प्रजा पत्तियों ने, श्रीहरि विष्णु परमात्मा का यश गाने के निमित्त सब गंधर्वों को तथा अप्सराओं को बुलाया था। यह जानकर स्त्रियों से घिरा हुआ मैं गान करता२ ही तहां चला गया, तब उस मेरी करी हुई अवज्ञाको जान कर प्रजापत्तियों ने क्रोध के वेगसे, वा नीतिके विरुद्धा चरण होने से, कहते भये, कि तुमने जो हमारी अवज्ञा करी है, इस कारण तुम निस्तेज होकर शीघ्र ही *शूद्र योनि को प्राप्त हो। इस प्रकार का मेरे को शाप दिया॥ वह शाप होते ही मैं ने एक दासी के उदर में जन्म लिया, परन्तु उस शूद्र योनि में भी मेरे को ब्रह्म ज्ञानि महात्माओं का सत्संग रहा और उनकी सेवा करने का अवसर मिला, उस सत्संग के

---

* इस नारद जी के वाक्य से हमको यह भी उपदेश मिलता है, कि माता, पिता, गुरु, राजा, देव स्थानादिकों में अर्थात अपने पूज्य वर्गों के सामने, अत्यंत शांति नम्रता पूर्वक जाना चाहिये जिससे हमारे पूज्य हम पर प्रसन्न होकर वरदान (आशीर्वाद) दें। ऐसा नहीं करने से अर्थात् शांति पूर्वक नहीं जाने से, नारद जी की नाई हमारी दुर्गति में भी कोई संदेह नहीं होता है।

प्रभाव से आगामी जन्म में मैं ब्रह्मा जी का पुत्र होता भया" भा० ७। ६९। ७०। ७१। ७२। ७३॥ इत्यादि पूर्वोक्त भागवत् के प्रमाणों से कोई अकर्मज कोई कर्मज, दोनों ही सिद्ध होते हैं॥ इस लिये दिव्य अलौकिक का अर्थ अकर्मज कदाचित नहीं हो सकता है॥ ६॥

मू०—अथवाऽलौकिकत्व मभौतिकत्वं तदुक्तं श्री कृष्णं प्रति ब्रह्मणा—

"अस्यापि देव वपुषो मदनु ग्रहस्य।
स्वेच्छा मयस्य नतु भूत मयस्य कोपि॥
नेशे महित्व वसितुं मनसान्तरेण।
साक्षात्तवैव किमुतात्म सुखानु भूते॥२॥

भा० स्क० १० अ० १४ श्लो० २॥ इत्यत्र श्री कृष्णावतारऽभौतिकत्वं प्रदर्शित मिति चेदत्रा-प्य व्याप्तिःप्रतीयते॥ तथाहि—

"देहं विपन्ना खिल चेतनादिकं,
पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः॥
आलक्ष्य किञ्चिच विलप्य सासती

चिता मथा रोपयद् द्रिसानुनि ॥"

भा०स्क० ४ अ० २३ श्लो० २१ ॥ इत्यत्र पृथोर्देह दाहेन भौतिकत्वं ध्वानितं, भौतिकस्यहि कायस्य भौतिकाग्निना दाह योग्यता, ऽभौतिकंस्वशार-ण्यादिकं भौतिकोवह्निर्भस्मीकर्त्तुं नैवशक्नोति, समानयोर्हि साधक बाधक भावो दृश्यते। तथाहि—

"लोकाभिरामां स्वतनुं धारणा ध्यान मङ्गलम्। योग धारणयाग्नेय्या दग्ध्वाधामा विशत्स्वकम्॥"

मू०—भा० स्क० ११ अ० ३१ श्लो० ५॥ इत्यत्र श्रीकृष्णविग्रहस्या भौतिकत्वा द्भौतिकाग्निना दाहोनैवोक्तः, किन्तु माया मयस्य माया मय हुताशनेन दाहो दर्शितः॥७॥

टी०—अब यदि अलौकिक का अर्थ अभौतिक (पंच भूतों के विकार से रहित) मानों; तो जैसाकि भागवत् दशम स्कन्ध में ब्रह्मा जी ने श्री कृष्ण जी से कहा है, कि-" हे देव! भक्तों की इच्छानुसार प्रगट

हुए, तथा मेरे ऊपर अनुग्रह करने वाले, इस आपके अति सुलभ अवतार की महिमा को मैं ब्रह्मा व दूसरा और कोई भी जानने को समर्थ नहीं । क्योंकि-यह अवतार (स्वेच्छा मयस्य) अर्थात् आपका लीलामय अचिन्तनीय शुद्ध सतोगुणी है । पंच भूतों का विकार नहीं है, यदि इस आपके शरीर (अवतार) की महिमा नहीं जानी जाती, तो-केवल आत्म के अनुभव मात्र से, तुम्हारे त्रिगुणा तीत स्वरूप की महिमा को एकाग्र करे हुए मन से जानने को कोई भी समर्थ नहीं है, इसका कहना ही क्या है, अर्थात् ईश्वर अनुग्रह विना भगवत्स्वरूप का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है" भा० १० । १४ । २ ॥ इस प्रकार श्री कृष्ण अवतार को भौतिक अर्थात्-पंच भूतों के विकार से रहित दिखाया है ॥

अब पूर्व पक्षी कहता है, कि-हे एक देशी ! यदि तुम इस प्रकार का भी अवतार का लक्षण मानें, तो भी पृथु अवतार में यह लक्षण नहीं घट सकता है, इस लिये यहां भी अव्याप्ति दोष प्राप्त ही है; क्योंकि-भागवत् चतुर्थ स्कन्ध में पृथु अवतार की ब्रह्म में लय वर्णन करते समय यह कहा है, कि-"तिस अर्चि-नाम पृथु अवतार की रानी ने पृथ्वी का पालन करें

ने वाले, अपने पति राजा पृथुके शरीर को चेतनादि सर्व धर्मों से रहित हुआ देख कर, अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुआ जानकर, उनके वियोग के दुःख से कुछ काल पर्यंत विलाप कर, पुनः तिस पति व्रता ने पति के साथ गमन (सत्ती) होने के निमित्त, पर्वत में एक स्थान पर काष्ठों की चिता बनाकर, उसके ऊपर पति के शरीर को स्थापन किया " भा० ४ । २३ । २१ ॥ इस प्रमाण से प्रतीत होता है, कि—पृथु का शरीर भौतिक था—क्योंकि भौतिक शरीर ही भौतिक अग्नि से दाह के योग्य होता है, (उदाहरण) जैसे अभौतिक स्वप्न के बन को तथा स्वप्न के सिंह चौरादिका को भौतिक अग्नि दाह नहीं कर सकती, अर्थात् जाग्रत के अग्नी, और शस्त्रादिक कुछ स्वप्न में काम नहीं दे सकते, स्वप्न के ही काम देंगे, क्योंकि-यह बात देखने में ही आती है, कि—समान वस्तु का ही आपस में साधक तथा बाधक भाव हो सकता है। अर्थात् वस्तु को सिद्ध करने वाली और नाश करने वाली होती है, जैसे मृतिका और घटकी समसता है, याते मृतिका घटका साधक है, काष्ट और अग्नि की समसता है, तहां आग्नि काष्ट का बाधक है, मरूथल जलकी और प्यास का सम सता नहीं, याते मरूथल का जल

ध्यास का बाधक नहीं, इसमें यह रहस्य है, कि स्वप्न के पदार्थ स्वप्न मे ही सहायक होते हैं, जाग्रत में नहीं, और जाग्रत के स्वप्न में नहीं, तैसे ही भागवत् एकादश स्कन्धों में श्री कृष्ण जी के शरीर को अभौतिक दिखाया है।

"लोकाभिरामां स्वतनुं धारणा ध्यान मंगलम् ॥
योग धारणयाग्नेय्या दग्ध्वा धामा विशत्स्वकम्"
भा० स्कं० ११ अ० ३१ श्लोक ६ ॥

टी०—इसका अर्थ यह है-कि—" लोकों को आनंद देने वाले, धारणा के द्वारा ध्यान करके के उत्तम विषय, ऐसे अपने शरीर को, अग्नि की योग्य धारणा से भस्म न करिके, भगवान् श्रीकृष्णदेव जी स्वधाम अर्थात्-अपने लोक को जाते भये" भा० ११।३१।६॥*

इस तरह श्रीकृष्णजी के शरीर को अभौतिक

* नोट—शंका-योगि पुरुषों की भी स्वच्छन्द (स्वइच्छा के अनुसार मृत्यु होती है, इसमें कृष्णजी की विशेषता क्या रही ॥ समाधान—यद्यपि आपका कथन यथार्थ है) तथापि-वह योगि पुरुष अग्नि की योग धारणा से स्वशरीर को भस्म करके परलोक जाते भये हैं। और भगवान् श्री कृष्णदेव जी ने तो,भक्तों के ध्यान के निमित्त,तथा उनको साक्षात् दर्शन होंय,इसलिये अपने शरीर को भस्म नहीं करा। इसी वास्ते अनन्य भगवत् प्रिय सूरदास आदि महात्माओं को उस मनोहर श्याम सुन्दर मूर्त्ति का दर्शन भी हुआ तथा अब भी ध्यान कर्त्तायों को भगवत् विग्रह का दर्शन होता है)

होनें से, भौतिक अग्नि से दाह नहीं दिखाया—किन्तु माया मय शरीर का, माया मय अग्नि से दाह दिखाया है ॥ इत्यादि प्रमाणों से कोई भौतिक, और कोई अभौतिक, शरीर सिद्ध होते हैं। इस लिये अलौकिक का अर्थ अभौतिक करना यह लक्षण अवतार का निर्दोष नहीं है अर्थात् अव्याप्ति दोष करके—ग्रस्त है। इति ॥ ७ ॥

(सूचना) अब यहां तक तो—अवतार के विषय एक देशी तथा पूर्व पक्षी के परस्पर शंका समाधान कहे हैं इससे आगे सिद्धान्ति के ही सम्पूर्ण वाक्य आवेंगे। ॥ इति ॥

मू०—इत्येवं नाना विकल्प कलापे प्राप्ते सति, प्रत्युत्तर मभिधीयत्ते। तत्र त्रिविध दोषवि धुराणी-श्वरावतार लक्षणानि निरूप्यन्ते—

टी०—इस तरह अनेक विकल्पों के प्राप्त होने पर, सिद्धान्ति अपने मत के अनुसार प्रति उत्तर कथन करता है ॥ और तिसमें भी तीन प्रकार के दोषों से रहित-अर्थात् अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव इन दोषों से रहित ईश्वर अवतारों के लक्षणों को निरूपण करते हैं ॥

मू०—"परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच ॥" श्वे० श्वे० उ०

अ० ६ मं० ८ ॥ "धर्मावहं पापनुदं भवेशम्" श्वे०—श्व० उ० अ० ६ म० ५ ॥ "य आत्माऽपहतपाप्मा" सत्य कामः सत्य सङ्कल्पः" छा० उ० अ० ८ ॥ "विवक्षित गुणोपपत्तेश्च" ब्र० अ० १ पा २ सू० ॥ इत्यादि श्रुति शास्त्रप्रदर्शिता ज्ञानादयस्तेजः स्वातन्त्र्य प्रभृतयश्चानन्ताः परमेश्वरे गुणास्सन्ति । ईश्वरेण ज्ञानादय स्त्र गुणा अवतारिताः प्रकाशिता येषुत ईश्ववरावताराः ॥

टी०—श्वेताश्वतुर उपनिषद् में कहा है, कि—"इस परब्रह्म की परानाम शक्ति अनेक प्रकार की श्रवण की जाती हैं, और उसकी ज्ञानि शक्ति, बल शक्ति, क्रिया शक्ति, स्वभाविकी अर्थात् अनादि सिद्ध है" श्वे०—६।८॥ तैसे ही श्वेताश्वतुर उपनिषद् के पांच वें मंत्र में भी कहा है, कि—"धर्मावहं"—यज्ञदान तपादि समाराध्य रूप कर्मों करके अर्थात् तप यज्ञादि कर्मों कर प्रसन्न किये हुए भगवान्, तिन कर्मों करके धर्मरूप (सुखादि) फलके देने वाले हैं। और "पापनुदं" तिसही यज्ञादि रूप समाराध्य रूप शुभकर्मों

द्वारा पाप ध्वंसक हैं, श्वे० ६।५॥ और तैसे ही छान्दो-ग्य उपनिषद् में भी कथन किया है, कि-"जो आत्म स्वरूपब्रह्म (अपहृत पाप्मा) पापों से रहित शुद्ध निर्विकार है, सोई सत्यसंकल्प तथा सत्यकाम अर्थात् पूर्ण काम है" छां०उ० ८॥ और ब्रह्म सूत्र में भी कहा है, कि-" विवक्षित गुणोपपत्तेश्च " ब्र० अ० १ पा० २ इस सूत्रके भाष्य में कहा है, कि-"तदिह ये विवक्षिता गुणा उपासनाया मुपादेयत्वे नोपदिष्टाः सत्य संकल्प प्रभृतयस्ते परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्त इति भाष्यम् " ॥ अर्थ–जो विवक्षित गुण उपासना में उपादेयत्व रूप (ग्रहण रूप) करके कथन किये हैं, वो सर्व सत्य संक-ल्पादि गुण परब्रह्म में ही प्राप्त होते हैं" ब्र० १ । २ ॥ इत्यादि श्रुति शास्त्रोक्त प्रमाणों से दिखलाये हुए ज्ञानादिक, तथा तेज स्वातन्त्रतादि अनन्त गुण परमे श्वरविषे ही प्राप्त होते है। उन गुणों को ईश्वर ने जिस व्यक्ति अर्थात् शरीर में प्रकट किये हों, वे ही ईश्वरावतार कहे जा सकते हैं। और तैसे ही कपिल देवजी के विषय श्वेता श्वतुर उपनिषद् में कहा है।

मू०–" ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे, ज्ञानै र्बिभर्त्ति जायमानञ्च पश्येत् " श्वे०श्व०उ० अ०

५ मं० ६॥ इति कपिल देव विग्रहे परमेश्वरेण ज्ञानादय स्स्वगुणः स्थापिता, अत स्स ईश्वरावतारत्वेनोच्यत, इत्थं यत्र यत्र परमेश्वर गुणाः सन्तित ईश्वरावताराः॥

टी०—ऋषि नाम सर्वज्ञ पूर्व काल में प्रकट हुए, तथा सगर राजा के पुत्रों को जलाने वाले श्री वासु देवके अंश कपिल देवजी का अवतार वर्णन है और जो परमात्मा पहले तिस अपने करके उत्पन्न किये सर्वज्ञ कपिल ऋषि को सर्वज्ञतादि सम्पूर्ण अपनी शक्तियों से पूर्ण करता भया, और फिर उत्पन्न हुए को जो स्वयं साक्षी रूप से देखता है॥ और जो तिस सम्पूर्ण विश्वको पोषण करे है तथा देखे है, श्व० ५।६॥ ईश्वर ने अपने ज्ञानादिक गुण कपिल ऋषि में स्थापन किये है, इस लिये वे ईश्वरावतार कहे जाते हैं। इस प्रकार जहां जहां जिस व्यक्ति में ईश्वर के गुण मिलें वह ईश्वरावतार हैं।

मू—०तदुक्तं भगवता"यद्यद्विभूति मत्सत्वं श्री मदूर्जित मेव'वा॥ तत्तदेवा वगच्छत्वं मम तेजांऽश सम्भवम्" गी० अ० १०। श्लो० ४१॥

टी०—वही बात भगवत् गीता दशम अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण देव जी ने अर्जुन से कहा है, कि-"हे अर्जुन ! जो जो प्राणी विभूतिमान् अर्थात् ऐश्वर्य वान् श्रीमान् है, अथवा किसी अन्य गुणों करके श्रेष्ठ देखने में भी आता है, उसको ही तुम मेरे तेज के अंश से उत्पन्न हुआ जान" गी० १०। ४१ ॥ तात्पर्य यह है, कि संसार में जो पदार्थ श्रेष्ठ हैं, वे वे सब भगवान् की ही विभूति है । जो जिस गुण से श्रेष्ठ समझा जाता है, वह भगवान् का ही अंश है। जैसे "आनन्दोब्रह्म" इस श्रुति से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि-आनन्द रूपब्रह्म है, तो फिर जो जो पदार्थ विशेष आनन्द तथा प्रियता उत्कृष्टता का जनक है,-सो भगवाद्विभूतिरूप अंश ही है ॥ तैसे इसी विषयको श्रीमद्भागवत्प्रथम स्कन्ध में भी भगवत्सम्बन्धी गुण कथन किये हैं ॥ सो इस प्रकार हैं—

सत्यं शौचं दया क्षान्ति स्त्यागस्सन्तोष आर्जवम्॥
शमो दम स्तपः साम्यं तितिक्षो परति श्श्रुतम् ॥१॥
ज्ञानं विरक्ति रैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्ति धैर्य्यं मार्दव मेवंच ॥२॥
प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥

गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्त्तिर्मानोऽनहंकृतिः।३।
"एते चान्येच भगवन्नित्या यत्र महा गुणाः ।
प्रार्थ्या महत्त्व मिच्छद्भि,र्न वियन्तिस्म कर्हिचित्"
भा० स्क० १ अ० १६ श्लो० २७।२८।२९।३०॥
एवं विधाः परमेश्वर गुणाः श्री कृष्ण विग्रहे
प्रदर्शिता अतश्श्रीवासुदेव ईश्वरावतारः ॥१॥

टी०—सत्यं—(यथार्थ भाषण) शौचं (बाह्याभ्यान्तर पवित्रता अर्थात् शरीर और मन की शुद्धि) दया (पर दुःख दूर करने की इच्छा) क्षान्तिः (क्रोधादि की सहन शक्ति) त्याग (सत्य पात्र में दान वा उदारता) संतोषः (यथा लाभ सन्तुष्ट) आर्जवम् (सरल स्वभाव) शमः (मनोनिग्रह) दमः (इंद्रिय निग्रह) तपः (स्वाध्याय वा स्वधर्म पालन वा कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतादिक) साम्यं (शत्रु मित्रादि में समान बुद्धि) तितिक्षाः (शीत उष्णादि की सहन शक्ति) उपराति (शब्दादि विषयों से उपरामता) श्रुतं (शास्त्र के अर्थ का विचार) ज्ञानं (सर्व पदार्थों का ज्ञान वा स्वस्वरूप ज्ञानं) विरक्तिः (विषयों की इच्छा का त्याग), एश्वर्यम् (स्वप्रभाव से नियामक

शक्ति) शौर्य (पाक्रम संग्राम में वैरों को नष्ट करने की सामर्थ्य) तेजः (प्रभाव) बलं (शरीर सामर्थ्यता वा चातुरता) स्मृतिः (कर्त्तव्य अर्थका अनुसंधान) स्वातन्त्र्य (स्वतन्त्रता–अपराधीनता) कौशलम् (क्रिया निपुणता वा चातुरता) कान्तिः (सुन्दरता) धैर्य (अनिष्ट प्राप्ति में सावधान रहना घबराना नहीं) मार्दवम् (कोमल स्वभाव वा निम्रता) प्रागल्भ्यं (प्रौढता) प्रश्रयः (विनय) शील (श्रेष्ठ बर्ताव) सह (मनोबल) ओजः (ज्ञान इन्द्रियबल) बल (कर्म इन्द्रियबल) भगः (स्वतन्त्र भोग) गाम्भीर्य (गंभीरता) स्थैर्यम् (क्रोधादिकों के निमित्त होते भी चित्त से अव्याकुलता वा निर्विकार रहिना) आस्तिक्यं (गुरु वेद शास्त्र के वाक्यों पर विश्वास) कीर्त्तिः (सुयश) मान (पूज्य भाव) अनहंकृतिः (अहंकार से रहित) भगवन् (हे धर्म) महत्त्व की इच्छा करने वाले पुरुषों के प्रार्थना करने योग्य यह उनतालीस गुण, तथा ब्राह्मणो पर दया करना, शरणागत की रक्षा करना, इत्यादि गुण जिनके विषे नित्य स्वभाव से रहते हैं, वह कदापि नाश को नहीं प्राप्त होते हैं " भा० १।१६।२७।२८।२९।३० ॥

इस तरह भगवत् गीता तथा श्री मद्भागवत् में कथन किये 'सत्य शौचादि' अनन्त गुण परमेश्वर के श्री

कृष्ण विग्रह में दिखाये गये हैं, इस लिये वासुदेव श्री कृष्ण ईश्वरावतार है ॥ १ ॥

मू०—अथवा— " यावदधिकारमवस्थिति राधिकारिकाणाम्" ब्र० अ० ३ पा० ३ सू० ३२॥

टी०—जहां तक जो कार्य जिसके द्वारा कराना होता है, वहां तक उस कार्य के साधक गुण उस व्यक्ति में ईश्वर द्वारा आविर्भावित (प्रकट) होते हैं भावार्थ यह है, कि-अधिकारिक भी ईश्वर स्वरूप हैं क्योंकि सृष्टिके आदि कालविषे जगत् व्यवहार के चलाने के लिये परमेश्वर नें स्थापन किये जे देवता आदिक अधिकारी पुरुष हैं, तिन अधिकारी पुरुषों को जितने काल तक, सो अधिकार होवे हैं, जितने काल पर्यन्त तिनों की स्थिति होवे है, बीच में किसी वर, शाप, के वश से, तिन अधिकारी पुरुषों को जन्मांतर की प्राप्ति होने पर भी आत्मज्ञान का बाध होता नहीं, तथा ता अधिकार की समाप्ति काल विषे तिनों को मोक्ष भी अवश्य होवे है " इति ब्र० अ० ३ पा० ३ सू० ३२ ॥

मू० अत्रोक्ता येऽपान्तर तमश्शेषादयोधि-कारिकास्ते वैदिक धर्मोपदेशार्थं वा धर्म विरोधि

दुष्ट जन संहारार्थ मीश्वरेणा वतारिता देहान्तरैः संयोजिता इतीश्वरावताराः ॥ यथा कस्मिंश्चित्पुराणे दृष्ट्वोक्त सूत्र भाष्ये भाष्यकारैः प्रोक्तम्। "अपान्तरतमा नाम वेदाचार्यः पुराणर्षि विष्णु नियोगात्कलि द्वापरयोः सन्धो कृष्ण द्वैपायन स्सम्बभूवेति" तथाच शेषनागो भगवदाज्ञाया वलदेवो वभूव तदुक्तम्—

टी०—इस नियम के अनुसार कथन किये जो अपान्तर तम ऋषि तथा शेष आदिक भी ईश्वर के अवतार हुए हैं, क्योंकि वे वैदिक धर्म का उपदेश करने को, और धर्म के विरोद्धि दुष्ट जनों के संहार करने के लिये, ईश्वर द्वारा स्वगुण अलौकिकादि स्थापन पूर्वक प्रकट किये थे, अर्थात् इनका पूर्वोक्त कार्य सिद्धि करने के लिये देहान्तर से नियुक्त किया था। इस वास्ते यह भी ईश्वर के अवतार हैं। यह बात उक्त सूत्र के भाष्य में भाष्यकारों ने किसी पुराण को देखकर स्पष्ट कहा है, कि "अपान्तरतम नाम वेदाचार्य ऋषि विष्णु की आज्ञा से, कलि द्वापर की सन्धि—कलियुग तथा द्वापर के मध्य में

कृष्ण द्वैपायन (वेदव्यास) के रूप में अवतीर्ण अर्थात् प्रकट हुए हैं। और शेषनाग विष्णु भगवान् की आज्ञा से बलदेव रूप होते भये हैं' यह प्रसंग भागवत् दसमस्कन्ध में कहा है कि—

मू०—"वासुदेव कलानन्तः सहस्र वदनः स्वराट् । अग्रतो भविता देवो हरेः प्रिय चिकीर्षया ॥" भा० स्क० १० अ १ श्लो २४ ॥ इमावीश्वरा वतार गणनाया मपि गणितौ तथाहि-

टी०—सहस्र मुख वाले, और अपने तेज से प्रकाश मान जो वासुदेव भगवान् के अंश दिव्यरूप शेषजी' वह भी श्री हरिः का प्रिय करने की इच्छा से तिन से पहिले अर्थात् तिनके ज्येष्ठ भ्राता रूप से अवतार धारण करेंगे" भा. १० । १ । २४ ॥ ये दोनों ही अवतार गणना में भागवत् प्रथम स्कन्ध में गिने गये हैं। तैसे ही भागवत प्रथम स्कन्ध तीसरे अध्याय में भी कहा है कि—

मू०—"ततःसप्त दशे जातःसत्यवत्यां पराशरात् । चक्रेवेद तरोश्शाखा दृष्ट्वापुंसो ऽल्पमेधसः॥१॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।

राम कृष्णाविति भुवो भगवान हरद्भरम्" ॥२॥
भा० स्क० १ अ० ३ श्लो० २२।२३॥

टी०—जैसे सप्तदशे अवतार में पुरुषों की अल्प बुद्धि देख करके' पराशर ऋषि द्वारा सत्यवती में जन्म लेकर, वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग करते भये, और उन्नीसवें तथा बीसवें अवतार में भगवान् वृष्णि कुल में राम तथा कृष्ण स्वरूप धारण कर पृथिव के भार को दूर करते भये हैं" भा. १ । ३ २२ । २३ ॥

मू०—अनेनाभि प्रायेण भगवताप्युक्तम्—
"बहूनिमे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहंवेद सर्वाणि नत्वंवेत्थपरंतप" ॥ गी० अ० ४ श्लो० ५॥ अतोऽधिकारिका एव जन्मान्तरे ष्वीश्वरावतार सञ्ज्ञिता भवन्तीति॥२॥

टी०—इसी अभिप्राय से भगवान् श्री कृष्णदेव जी ने भगवद्गीता में कहा है, कि "हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत से जन्म पूर्व हो चुके हैं। परन्तु उन सर्व को मैं जानता हूं, तुम नहीं जानता है" गी. अ. ४

श्लो.५॥ इसलिये इत्यादिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है, कि-अधिकारिक ही जन्मान्तर में ईश्वरावतार संज्ञा को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

मू०-अथवा अवतरण मधिकारि जनानां बोधार्थं प्रादुर्भावो येषांते अवतारा ज्ञानिन इत्यर्थः। ईश्वरस्य अवतारा ईश्वरावतारा राजपुरुष वदीश्वर निदेश कारिणः इत्यर्थः। ईश्वरस्येति सम्बन्धेषष्ठी ॥ ३ ॥

टी०-अब दूसरी प्रकार से कहते हैं, कि-आत्म ज्ञान प्राप्ति की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुषों के ज्ञान उपदेश के लिये जिनका अवतार है, वे तत्त्वनिष्ठ ब्रह्मवेता ज्ञानी पुरुष भी ईश्वरावतार हैं, क्योंकि "ब्रह्म वित्त् ब्रह्मैवभवति" इस श्रुति प्रमण सेभी "ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म स्वरूप ही है" अन्य श्रुति में भी कहा है, कि "एव मेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरा त्समुत्थाय परं ज्योति रूपं संपद्य स्वेन रूपेणा भिनिष्पद्यते। स उत्तमः पुरुषः॥" अर्थ-और संप्रसाद नामा जीव विचार तें स्थूल सूक्ष्म शरीर के अभिमान को त्याग के अहं ब्रह्मास्मि या प्रकार ते पर ब्रह्म कूं अपना

आत्मा रूप जानके, वो परब्रह्म रूप होवे है। और जो अधिकारी पुरुष ब्रह्म साक्षात कार करके परब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ है, सोई सर्व से उत्तम श्रेष्ठ है, तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुष है ॥ इति ॥ इस लिये ब्रह्मज्ञानी को ईश्वरावतार कहना निर्दोष है। क्यों, कि–राजपुरुष में जैसे षष्ठी तत्पुरुष समास से राजा के प्रधान आज्ञाकारी पुरुष राज पुरुष कहे जाते हैं' राजा के सम्बन्धी होने से' इसी तरह ईश्वरके आज्ञाकारी प्रधान गुण सम्पन्न ज्ञानी भी ईश्वर के अवतार कहे सकते हैं, इस षष्ठी तत्पुरुष समास से ईश्वर की आज्ञा के करने वाले ज्ञानी भी ईश्वरावतार हैं। 'ईश्वरस्येति' यह सम्बन्ध में षष्ठी है, यथा ईश्वर संबंधी अवतार ॥ ३ ॥

मूं०–अथवा–अवतरणं चरम देह ग्रहणं येषां तेऽवतारा, ईश्वरस्य प्रिया वा ईश्वरः प्रियो येषांत ईश्वर प्रिया, ईश्वर प्रियाश्चते ऽवतारा श्चेती श्वरावतारा अत्र शाक पार्थिव वन्मध्यम पदलोपी समासः। भगवत्प्रियास्तु भगवता प्रोक्ताः "प्रियोहि ज्ञानिनो ऽत्यर्थं महंसच ममप्रियः ॥" ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" गी० अ०७श्लो०१७।

टी०—पक्षान्तर से समाधान—ईश्वर में अवतरण करने वाले अर्थात् मोक्ष उपयोगी अन्तिम शरीर को धारण करने वाले जो पुरुष हैं, सो ही ईश्वरावतार कहे जाते हैं। फिर ईश्वर प्रिय (ईश्वर के प्यारे अथवा ईश्वर जिन को प्रिय प्यारा है) जो अवतार का लक्षण इस तरह कर्म धारय समास करने पर, शाक पार्थिवादि की नाईं होनेसे, उत्तर पद (प्रिय) का लोप हो जाने से, ईश्वर के प्यारे मोक्ष उपयोगी चरम—अन्तिम शरीर को धारण करने वाले जीव भी ईश्वरावतार हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण देव जी ने अपने प्यारे मनुष्य गीता में स्वयं बताये हैं, कि—"ज्ञानी को मैं बहुत अधिक प्रिय हूं, और ज्ञानी भी मेरा बहुत अधिक प्यारा है। बहुत अधिक कहने से क्या प्रयोजन है, अर्थात् ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है!" गी० ७। १७॥ इस प्रकार ज्ञानी पुरुष को तो भगवान् अपना आत्मा करके कथन करते हैं, इस "आत्मा" कहने से यह सिद्ध होता है, कि ज्ञानी का और मेरा यद किंचित भी भेद नहीं है दोनों एक ही हैं॥

मू०—भगवत्प्रियाणां विशेष लक्षणानितु—
"अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एवच॥

निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी॥१॥
सन्तुष्ट स्सततं योगी यतात्मा दृढ निश्चयः।
मय्यर्पितमनो बुद्धि र्यो मद्भक्त स्सभे प्रियः॥२॥
गी० अ० १२ श्लो० १३।१४॥ इत्यादिना भगवता
सन्दर्शितानि ॥ ४ ॥

टी०-तैसे ही भगवत् प्रियों के विशेष लक्षणों को भी भगवान् ने गीता के द्वादश अध्याय में निरूपण किये हैं "सर्व प्राणियों से मैत्री रखे, द्वेष न करे, दुखी तथा अनाथों पर दया करना, अहंता ममता से रहत होना, सुख तथा दुखको सामान जानना, क्षमावान होना, यथा लाभ में संतुष्ट रहना, अष्टांग योग अर्थात् यम नियमादि के सहित होना, और जीता है स्वभाव जिसने, अर्थात पूर्वावस्था में बहिर्मुख चित की वृत्तियों को अन्तर मुख किया है जिसने, स्व स्वरूप में तथा वेद शास्त्रों में संशय और विपर्य से रहित है निश्चय जिसका, और मैं सच्चिदानन्द रूप परमात्म में अपर्ण किये हैं मन और बुद्धि के व्यापार जिसने अर्थात् नित्य प्रति जो कर्म करता है सो मेरे ही अर्पण करता है, ऐसा जो मेरा भक्त है, सो मैरे को अत्यंत प्यारा है" गी० १२। १३। १४॥ ४॥

मू०—ईश्वरस्या वतरणं तादात्म्येना परोक्षता येषुत ईश्वरावतारा एवं वा भगवत्प्रिया ईश्वरावताराः ॥ ५ ॥

टी०—अब अन्य प्रकार से समाधाना निरूपण करते करते हैं, ईश्वर का अवतरण नाम [1]तादात्म्य संबन्ध करके अर्थात् अभेद सम्बन्ध करके ईश्वर का अपरोक्ष ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन जिनको होता है, वे ईश्वरावतार हैं, अथवा ऐसे भगवत्प्रिय भी ईश्वरावतार हैं॥५॥

मू०—अत्रायं निष्कर्षो, वहुविधाः परमेश्वरावताराः, केचन श्याम वर्णाः' केचन शुक्ल वर्णाः' केचित् चतुर्भुजाः, केचित् द्विभुजाः, केचन भौतिक, कर्मज, योनिज देहाः। केचना भौतिकाकर्मजा योनिज कायाः। परब्रह्मज्ञान तेज स्स्वातन्त्र्य धर्मावहत्व पापनुदत्वादि परमेश्वर गुणा-

१ तहां—"भिन्नत्वे सत्यऽभिन्न सत्ता कत्वं तादात्म्यं" अर्थ—जो दो पदार्थ व्यवहार दृष्टि से परस्पर भिन्न हुए भी वास्तव तै एक सत्ता वाले होवे हैं, तिन दो पदार्थों कातादात्म्य सम्बन्ध होता है। जैसे तंतु पटादिकों का, तथा गुण गुणी आदिकों कातादात्मय संबध है, तैसेही जीव और ब्रह्म का तादात्म्य सम्बन्ध है॥

विष्टत्वेश्वर प्रियत्व परमेश्वर निदेश कारित्वा-दीनि लक्षणानि तेषु नैवव्यभिचरन्ति। श्यामल-त्वादीनि त्ववतार विशेष लक्षणानि। ईश्वर शक्त्या विष्टत्वादी न्येव सामान्य लक्ष-णानि ॥ तत्रये चतुर्भुजाः श्यामला भौतिका कर्मजा योनिज देहास्ते श्रीकृष्णादयः पूर्णा वताराज्ञेया, ये च द्विभुजाश्शुक्ल वर्णाः कर्मज योनिज कायास्ते पृथु प्रभृतयः प्राचीनाः, श्री गुरुनानकादयोऽ र्वाचीनाश्च परमेश्वरस्यांश कला वतारादिना कथ्यन्ते ॥

टी०—इस विषय में सारांश यह है, कि ईश्वर के अवतार अनेक प्रकार के हैं। कोई श्याम वर्ण हैं, तो कोई गौर वर्ण भी हैं, कोई चतुर्भुज हैं, तो कोई दो भुजवाले भी हैं, कोई भौतिक (पंच भूतों के कार्य) तथा कर्म जन्य, योनिज देह वाले हैं। और कोई अभौतिक (भूतों के विकार से रहित) अकर्मजन्य अयोनिज देह वाले हैं,। परन्तु ज्ञान तेज स्वातन्त्रयता धर्मावहत्व (धर्म का संरक्षण) पापानुदत्व (पापों को नाश करना) इत्यादि जो परमेश्वर के गुण हैं तिन

कर युक्त होना, ईश्वर के प्यारे होना, तथा ईश्वर के आज्ञाकारी होना, इत्यादि लक्षण उनसे दूर कभी नहीं हो सकते, अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण उनमें नित्य ही रहते हैं। श्याम वर्ण आदि तो अवतारके विशेष लक्षण हैं। और जो ईश्वर की विशेष शक्तियों कर युक्त होना है, सोई अवतार का सामान्य लक्षण है। उनमें भी जो चतुर्भुज, श्याम वर्ण, अभौतिक, अकर्मज, अयोनिज देहवाले श्री कृष्ण आदि अवतार हैं। वे पूर्ण अवतार हैं, और जो द्विभुज, गौर वर्ण, भौतिक, कर्मजन्य, योनिज देह वाले पृथु आदिक प्राचीन, और श्री गुरु नानक आदि नवीन, ये सर्व परमेश्वर के अंशावतार तथा कलावतार कर कहे जाते हैं॥

मू०—वैदिक धर्म्म प्रचार स्तद्विरोधिना मुपसंहार स्त्विति प्रयोजनस्यापि सर्वावतारेष्वव्यभिचारः॥ तदुक्तं भगवता—

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत।
अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥
परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥२॥
गी० अ० ४ श्लो० ७। ८॥

टी०वैदिक धर्म का प्रचार करना, तथा वैदिक धर्म के विरोधियों को संहार करना इत्यादिक अवतारों के प्रयोजन तो सर्व अवतारों में पाये जाते हैं, अर्थात् यह प्रयोजन तो विरोध रहित सर्व अवतारों में सामान ही प्राप्त है, इस विषय में किसी प्रकार का भी व्यभिचार नहीं है ॥ तैसे ही यह अवतार का प्रयोजन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण देवजी ने गीता में कहा है कि—हे अर्जुन! जिस जिस काल में वैदिक धर्म की हानि होती है, और अधर्म की वृद्धि होती है। तिसकाल में ही मैं अपने आत्मा को प्रकट करता हूं ॥ अर्थात् अवतार धारण करता हूं ॥ (दूसरा प्रयोजन यह है, कि—साधु महात्माओं की रक्षा के लिये और दुष्टों के नाश के वास्ते हर एक युग में अवतार लेकर मैं धर्म की सम्यक स्थापना करता हूं ॥ गी० ४।७। ॥ ८ ॥,, इस करके सर्व शक्ति मान परमात्मा का अवतार धारण करने का प्रयोजन सिद्ध हुआ है ॥

मू०—अयं भावः कैश्चिद्वराहादिभि र्हिरण्याक्षादयो धर्म विरोधिनो ह्युपसंहृताः। कैश्चिद्वेद व्यासादिभिर्वैदिक मार्गा एवोपदिष्टाः। कैश्चन श्रीराम कृष्ण प्रभृतिभिरुभयं कृतं तेऽवतारत्वेन

सर्वे सदृशा अपि, पारमेश्वर गुणानां न्यूनाधिक्येन परस्पर मुपास्यो पासक भावेनापि वर्त्तन्ते, तेन नेश्वरावतारत्व क्षतिः ॥

टी०–तात्पर्य यह है-कि-कोई वराहादिक अवतार तो हिरण्याक्ष आदिक धर्म के विरोधियों को संहार करते भये हैं, कोई बेद व्यासादिक अवतार वैदिक मार्ग का उपदेश करते भये हैं, वे सब यद्यपि अवतार होने के कारण सामान ही हैं। तथापि-ईश्वर सम्बन्धी गुणों को उनमें न्यूनाधिक होने से वे परस्पर उपास्य उपासक भावयुक्त भी थे, अर्थात् कोई वेदव्यासादिक तो उपासक है, और कोई श्री कृष्णादि उपास्य हो जाते हैं। परन्तु तिस करके ईश्वर अवतार मानने में कोई क्षति (हानि) नहीं हो सके है। भावार्थ यह है, कि-धर्म की रक्षा करना, तथा दुष्टों को नाश करना, यह अवतार का प्रयोजन दोनों में सदृशही है, इसमें किसी प्रकार का भी विरोध नहीं है ॥

मू०–अथवा "यद्यदा चरित श्रेष्ठ स्तत्त देवेतरोजनः। सयत्प्रमाणं कुरुते लोक स्तदनुवर्तते" गी० अ० ३ श्लो० २१॥ इति गीतोक्त न्याय

माश्रित्य लोक शिक्षार्थं तेषां परस्पर मुपास्योपासक भावोज्ञेयः ॥

टी०—दूसरी बात यह भी है-कि-गीता मैं श्री कृष्ण जी ने कहा है कि-"श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण (कर्म) करते हैं, दूसरे समान पुरुष भी वैसे ही आचरण को करते हैं। तथा श्रेष्ठ पुरुष जिस को प्रमाण मानें हैं, तिनके अनुसारी पुरुष भी उसी को ही प्रमाण भूत मान, उसके अनुसार वर्त्तते हैं" गी० ३। २१ ॥ इस गीता उक्त न्याय (युक्ति) को लेकर लोक शिक्षा के लिये तिन अवतारों का परस्पर उपासक उपास्य भाव भी जानना चाहिये ॥

मू०—मुमुक्षुभि स्तु सर्वे परमेश्वरावतारा उपास्याः। यथाह सूतः "मुमुक्षवो घोर रूपान् हित्वा भूतपतीनथ। नारायण कलाः शान्ताः भजन्ति ह्यनसूयवः" भा० स्क०१अ०२श्लो० २६॥ एतेनातीता ये श्री शंकराचार्य्य प्रमुखा इदानीं तनाश्च विद्वांसः पुराणेष्वनुक्ता अपि श्यामलत्वाद्यवतार विशेष लक्षणा भावेपिपार-

मेश्वर ज्ञानादि गुणा विशिष्टत्व भगवत्प्रियत्वाद्य-वतार सामान्य लक्षणोपेतत्वादीश्वरावतार-त्वेन श्रेयस्कामै रुपास्या स्तदुक्तम् "यं यं लोकं मनसा संविभाति, विशुद्ध सत्त्वः कामयते यांश्च कामान्॥ तन्त लोकं जायते तांश्च कामां, स्तस्मादात्मज्ञंह्यर्चयेद्भूति कामः" मु० उ० तृ० प्र० ख० मं० १०॥

टी० इस लिये मुक्ति की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुषों को परमेश्वर के सब अवतारों की उपासना करना चाहिये। जैसा-कि सूतजी ने भागवत् प्रथम स्कन्ध में कहा है, कि- "मुक्ति की इच्छा वाले मनुष्य किसी में दोष दृष्टी ने करते हुए भयंकर रूप वाले भूत प्रेत पिशाच आदिकों को छोड़कर शान्त स्वरूप नारायण के अवतारों का ही सेवन करते हैं" भा० १। २। २६॥ इस करके पूर्व काल में उत्पन्न हुए श्री स्वामि शंकराचार्य आदिक, और आजकल के विद्वान् पुरुषों के नाम पुराणों में न कहे जानेपर भी, और श्याम स्वरूप आदिक अवतारों के विशेष लक्षण न होने से भी, तैसे ईश्वर सम्बंधी ज्ञानादिक पूर्वोक्त गुणों कर युक्त होने से, और भगवत्प्रिय होना, इत्यादि

अवतार के सामान्य लक्षणों से युक्त होने से, वे ईश्वर के अवतार कहे जाते हैं। इस लिये कल्याण की इच्छा वाले मनुष्यों को उनकी उपासना अवश्य ही करनी चाहिये। और यह प्रसंग मुण्डक उपनिषद् में भी कहा है, कि-"श्रद्धा भक्ति पूर्वक शुद्ध अन्तः करण से अर्थात् कपट माया जाल को त्याग कर ज्ञानवान् पुरुष के पूजनादि को करता हुआ यह अधिकारी पुरुष, जिस जिस लोक प्राप्ति की इच्छा करता है। और जिन जिन पदार्थों के प्राप्ती की इच्छा करता है। तिस तिस लोककूं तथा तिन तिन पदार्थों कूं प्राप्त होवे है॥ याते संपदा की इच्छा वाला पुरुष श्रद्धा भक्ति पूर्वक ब्रह्म वेत्ता पुरुष का ही पूजनादि करें मु० उ० तृ० मु० खं० २ मं० १०॥ और ब्रह्मवेत्ता की सेवा का फल स्मृति में भी कहा है "यद्येको ब्रह्मविद्भुंक्ते जगत्तर्पयतेऽखिलम्। तस्माद्ब्रह्म विदे देयं यद्यस्ति वस्तु किंचन" अर्थ-जिस पुरुष के गृहे विषे एक भी ब्रह्म वेत्ता पुरुष भोजन करे है। तभी सर्व जगत् कूं तृप्त करे है, अर्थात् सर्व जगत् की तृप्ति करने तैजो पुण्य होता है। सो पुण्य एक ब्रह्म वेत्ता के भोजन कराने से होता है, इस लिये इस पुरुष के जो कुछ अन्न वस्त्रादि प्रियवस्तु होवे, सो वस्तु मुमुक्षु पुरुष ने ब्रह्म वेत्ता पुरुष के तांई देना योग्य है, तहां औरप्रमाण

भी है-"यत्फलं लभते मर्त्यः कोटि ब्राह्मण भोजनैः। तत्फलं समवाप्नोति ज्ञानिनं यस्तु भोजयेत् ॥ ज्ञानिभ्यो दीयते यच्च तत्कोटि गुणितं भवेत्" अर्थ-यह जीव कोटि ब्राह्मणों के भोजन करवाने करके, जिस फल को प्राप्त होता है, तिस फल कूं यह पुरुष एक ज्ञानवान् पुरुष के भोजन सेवादि करवाने करके प्राप्त होता है, तथा ज्ञानवान् के ताईं जो वस्तु दिया जावे है-सो कोटि गुणाधिक लाभदायक होवे है ॥ इत्यादि अनेक श्रुति स्मृति वचन ज्ञान वान पुरुष की सेवा तैं मन वाछिंत पदार्थों की प्राप्ति कथन करे है। इति

मू०—अनेन कतीह्याकाङ्क्षापि निराकृता यत ईश्वरावताराणाम नन्तत्वात् तदुक्तम् "अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेस्सत्त्व निधे र्द्विजाः। यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युस्सहस्रशः" भा० स्क० १ अ० ३ श्लो २६॥

टी०—और-इस करके कितने ईश्वर के अवतार हैं, यह आकांक्षा भी दूर हो जाती है, क्यों-कि-ईश्वर के अवतार असंख्य (अनन्त) हैं। सो अनन्तता श्रीमद्भागवत् में स्पष्ट कहा है, कि-"हे ब्राह्मणों! जैसे उपक्षय शून्यात्सरसः (नाश रहित महां सरोवर से)

सहस्रों छोटीं२ नदीयां वा नहरें निकलती हैं, तैसे ही सत्त्व निधि-सत्त्व-गुण के समुद्र अर्थात्-सत्य स्वरूप श्री हरि से असंख्य (अनन्त) अवतार प्रकट होते हैं" भा० १ । ३ । २६ ॥ इस प्रमाण से निर संदेह ही हरि के अवतार अनन्त सिद्ध होते हैं ॥

मू०—अत्र यद्यपि तत्र तत्रोक्तान्यपि प्रमाणानि, तथापि अन्यान्यपि प्रदर्शयामि । "इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्" ऋ०मं०१सू० ५ मं० ७॥ अनेन त्रिविक्रमा वतारः कथितः ।

टी०—इस अवतार निर्णय के विषय में हमने जहां तहां तत् तत्स्थानों पर संदेह निवृत्ति के लिये प्रमाण कथन किये भी हैं । तथापि हम और दूसरे प्रमाणों को भी निरूपण करते हैं ॥ ऋग्वेद में कहा है, कि" इस विश्व को विष्णु भगवान् क्रमण करते हुए अर्थात् मापते हुए तीन प्रकार से चरण स्थापना करते भये, एक पाद पृथिवी पर दूसरा पाद अन्तरिक्ष में, तीसरा पाद स्वर्ग लोक में-इस प्रकार से चरणों को स्थापन करके समग्र भूमी मापते भये" ऋ० मं० १ सू० ५ मं ७ ॥ इस प्रमाण करके त्रिविक्रम (वामन) अवतार कथन किया है ॥ सो वामन रूप धारण करके विश्व-

का मापना श्री मद्भागवत स्कंध२ अध्याय७ श्लोक ४. में विस्तार से कहा है ॥ और तिसी प्रकार साम वेदी केन उपनिषद् में भी कहा है—

मू०—"ब्रह्महदेवेभ्यो विजिग्ये तस्यह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त' त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माक मेवायं महिमेति ॥ १ ॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्योह प्रादुर्बभूव तन्नव्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥२॥ सा० के० उ० ख० ३ ॥ इत्यादिना यक्षा वतारो दर्शितः ॥

टी०—"देवता असुर संग्राम में, देवताओं को भगवान् जय देते भये, तिस सर्व व्यापक ब्रह्मके जये हुए, इन्द्रादिक देवता इच्छा करते भये, कि-यह असुरों को हमने ही जीता है। और यह महिमा भी हमारी है ॥ १ ॥ देवताओं के इस मिथ्या अभिमान को परमात्म देव जानते भये, तिनके मिथ्या अभिमान की निवृत्ति के वास्ते, देवताओं के सन्मुख यक्ष रूप से (किसी विशेष रूप से) प्रकट होते भये, सो देवता यह नहीं जानते भये, कि-यह यक्ष कौन है" ॥२॥ सा०के० उ०ख०३॥ आगे जिस प्रकार से परमात्माने देवताओं

के अभिमान को दूर किया है, सो जिसको अधिक जानने की इच्छा हो, वे साम वेदी केन उपनिषद् में देखलें ॥ इस प्रकार से यक्ष अवतार का कथन किया है ॥

मू०-चिन्मयेऽस्मिन्महा विष्णौ जाते दाशरथौहरौ
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते योमही स्थितः ॥
सराम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटी कृतः ॥ १ ॥
धर्म मार्ग चरित्रेण ज्ञान मार्गञ्च नामतः ॥
तथा ध्यानेन वैराग्य मैश्वर्यं स्वस्य पूजनात् ॥
तथा रात्यस्य रामाख्यां भुवि स्यादथ तत्त्वतः॥२॥
चिन्मयस्या द्वितीयस्य निष्कलस्या शरीरणः॥
उपासकानां कार्य्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना॥ ३ ॥
इति राम पूर्व तापिन्यु पनिषच्छ्रुतिः ॥ तत्र
रामा वतारो दर्शितः ॥

टी०—और राम पूर्व तापिनी उपनिषद् में भी कहा है, कि—"चैतन्य घन (चेतन्य स्वरूप) अद्वितीय-द्वैतरूपी कल्पना से रहित, अशरीरि महा विष्णु परब्रह्म परमात्माने रघुकुलमें दशरथके पुत्र होकर, अपने भक्तों

की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करते भये। जो दशरथात्मज (दशरथ के पुत्र) रामचन्द्रजी भगवतावतार, अपने चरित्र से धर्म मार्गको, तथा नाम स्मरण से ज्ञान मार्ग को, और ध्यान से वैराग्य को, तथा पूजनादि सेवा से ऐश्वर्य को देते भये हैं। इस कारण से विद्वानों ने उनको लोक में राम इस नाम से प्रसिद्ध किया है॥ इस प्रकार राम पूर्व तापनी उपनिषद् में रामावतार कथन किया है।

मू०—सच्चिदानंद रूपाय कृष्णाया क्लिष्ट कर्मणे।
नमो वेदान्त वेद्याय गुरवे बुद्धि साक्षिणे॥ १॥
कालिन्दी जल कल्लोल सङ्गि मारुत सेवितम्॥
चिन्तय श्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः॥२॥
तस्मात् कृष्ण एव परमो देवस्तं ध्यायेत्॥ तं यजेत्। तं भजेत्।
इति गोपाल पूर्व तापिन्यु पनिषदि, तत्र कृष्णावतारो दर्शितः॥

टी०—और गोपाल पूर्व तापिनी उपनिषद् में भी कहा है-कि-"सच्चिदानन्द स्वरूप वेदांत वेद्य, वेदान्त शास्त्र कर जानने योग्य है स्वरूप जिसका, अक्लिष्ट-

कर्म (नहीं है कठिन कोई कार्य जिनकूं) सर्व जगत् के गुरू, बुद्धि के शाक्षी श्रीकृष्ण चन्द्र जी के प्रति हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥ तथा श्री यमना जी की तरङ्गों के जल कणों से, तथा शीतल वायु से, सेवन कियें गये श्रीकृष्ण जी को, जो पुरुष अपने अन्तःकरण में नित्य प्रति चिंतवन करता है। वह अनन्य उपासक संसार से मुक्त होजाता है ॥ इस लिये श्री कृष्ण ही परम श्रेष्ठ देव हैं। तिस से श्री कृष्ण जी को ही मुमुक्षु पुरुष ध्यान करें। उनका ही भजन करे। अर्थात्-अपना सर्वस्व श्री कृष्ण जी को ही जानना चाहिये ॥ इस प्रकार गोपाल पूर्वतापिनि उपनिषद् में श्री कृष्णावतार की महिमा निरूपण की है ॥

मू०—"यो ऽ सौ सूर्यें तिष्ठति, यो ऽ सौगोषु तिष्ठति, यो ऽ सौ गोपान् पालयति, यो ऽ सौ सर्वेषु देवेषु तिष्ठति, योऽसौ सर्वै देवै गीयते, यो ऽ सौ सर्वेषु भूतेष्वा विश्य भूतानि विदधाति, सर्वोहि स्वामि भवति साहोवाच गान्धर्वी कथंवाऽस्मासु जातो गोपालः कथं वा ज्ञातो ऽ सौत्वया मुने कृष्णः ॥ सहोवाचाब्ज योनिः। योवा ऽ वता-

राणां मध्ये श्रेष्ठोऽवतारः" इत्यादि गोपालोत्तर तापिन्युपनिषदि ॥

टी०— तैसे ही गोपाल उत्तर तापिनि उपनिषद् में भी कहाहै, कि-"जो सूर्य में स्थित है, तथा जो सूर्य की किरणो में वा गौवों में स्थित है, और जो गोपों की रक्षा करे है, तथा जो सर्व देवताओं में विराजमान है, और जो परमात्मदेव सर्व देवताओं करके स्तुति किया जाता है, अर्थात् सम्पूर्ण देवता जिसके यश को गान करते हैं। तथा जो यह सर्व प्राणि मात्र में प्रविष्ट होकर संपूर्ण प्राणियों को धारण करता है, वो ही हमारा स्वामि है ॥ तब सो गान्धर्वी बोली-कि-हे मुने! हमारे में गोपाल कैसे उत्पन्न हुए, और हे मुनीश्वर! श्री कृष्ण आपने कैसे जाने। तब ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया, कि-ये सर्व अवतारों में श्रेष्ठ अवतार हैं" और छांदाग्योपनिषद् के तीसरे अध्याय १७ खंड में भी कहा है, कि "कृष्णाय देवकी पुत्राय" इत्यादि श्रुति प्रमाणों से श्री कृष्ण जी का प्रादुर्भाव (अवतार) प्रसिद्धही है ॥

मू०—"एवं यथा जगत्स्वामी, देव राजो जनार्दनः अवतारं करोत्येष, तथा श्रीस्तत्सहायिनी ॥ वि० पु० अ० १ अ० ४ ॥

टी०—विष्णु पुराण में भी अवतार के विषय में कहा है, कि-"जगत् के स्वामि देवताओं के राजा जनार्दन भगवान् जैसे जैसे अवतार धारण करते हैं, तैसे तैसे ही लक्ष्मी भी अवतार धारण करती है" वि० पु० अं० १ अ ४ ॥ इस प्रकार लक्ष्मी जी का भी अवतार कथन किया है ॥

मू०—"अधुनैकादशं जन्म रामनाम्नो भविष्यति।
नारसिंहेनवपुषा हिरणय कशिपुं हरिः ॥ १ ॥
जघान वारत्रितयं मृगेन्द्र इव वारणम् ॥
वसुदेव गृहे विष्णो, भुंवो भार निवृत्तये ॥ २ ॥
अधुना षोडशं जन्म भविष्याति मुनीश्वर ॥
इति महर्षि वाल्मीकि क्रित योग विसिष्ठ
नि० प्र० स० २१ ॥

महर्षि वाल्मीकि कृत योग वासिष्ठ में भी अवतर के विषय में कथन किया है-कि 'हे मुनीश्वर ! अब श्री रामचन्द्रजी का ग्यारहवां नृसिंह अवतार होगा वे ही हरि भगवान् नृसिंह स्वरूप को धारण करके, जैसे सिंह हस्ति को मारता है, तैसे ही हिरण्य कशिपु राक्षस को तीन वार मार चुके हैं ॥ और अब पृथ्वी को भार

दूर करने के लिये, विष्णु भगवान् का सोलहवां अव-तार वसु देवके ग्रह में होगा ॥

मू०—वसिष्ठं प्रति काक भुशुण्ड वचनम्—

"एवं दत्वा वरंदेवो देवानां विष्णुरात्मवान् ।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥"
वा० रा० वा० कां० स० १५ ॥

इत्यादिषु वाल्मीकि महर्षिणा स्पष्ट मेव श्री रामो विष्णव वतारो दर्शितः ॥

टी०—तैसे ही वाल्मीकि रामायण में वसिष्ठ जीके प्रति काक भुशुण्ड जीने कहा है, कि-"सच्चिदानन्द स्वरूप विष्णु भगवान् इस प्रकार देवताओं को वरदान देकर, पिता राजा दशरथ जी को प्रसन्न करते भये" वा-रा-बा-कां-स- १५ ॥ इत्यादि ग्रन्थों करके महर्षि वाल्मीकि जीने श्री राम चन्द्र जी को साफ साफ ही विष्णु का अवतार कथन किया है॥

मू०—ननु बुद्ध उक्त परमेश्वरा वतार लक्षणा-नामव्याप्तिः प्रतीयते' यतोवैदिक मार्ग विप-र्यय स्त्रत श्रूयत इति नचवाच्यं, वैदिकानां

भगवत्प्रियाणां रक्षार्थमसुराणां विनाशार्थं च तेन तथा कृतम् । तदुक्तम्—

"देव द्विषां निगम वर्त्मनि निष्ठितानाम् ।
पूर्भिर्मयेन विहिताभि रदृश्य तूर्भिः ॥
लोकान् घ्नतां मति विमोह मति प्रलोभं ।
वेषं विधाय बहु भष्यत औप धर्म्यम् ॥ भा० स्क० २ अ० ७ श्लो० ३७॥

टी०—इस प्रकार सिद्धान्ति ने अपने पक्ष की, अनेक श्रुति स्मृति उक्त प्रमाणों से, तथा अनेक ऊहा पोह (युक्तियों) पूर्वक स्थापना की; अब पूर्वोक्त लक्षणों में प्राप्त कुछ विरोधियों के दोषों को, अनुवाद पूर्वक परिहार (निवृत्ति) करता है । सिद्धान्ति कार कहे हुए अवतारके लक्षणमें पूर्व पक्षी पहले शंका करता है, कि-हे सिद्धान्ति ? आपके कथन किये अवतार के लक्षण अनुसार बुद्ध भगवान् अवतार सिद्ध नहीं हो सकते, क्यों, कि- बुद्ध भगवान् के विषय में सुना जाता है, कि-उन्होंने वैदिक धर्म का खण्डन किया है । इस-लिये इस लक्षण में अव्याप्ति दोष आता है इति ॥ इसका उत्तर यह है ,कि-हे पूर्वपक्षी ! बुद्ध अवतार

विषय ऐसी शंका आपको कभी भी उत्पन्न नहीं होनी चाहिये, क्यों, कि-उन्होंने वैदिक मार्ग के विपरीत आचरण, तथा वैदिक मार्ग का खण्डन, केवल वैदिक मार्ग में स्थित पुरुषों की, तथा भगवत् भक्तों की रक्षाके लिये किया है, और असुरों के विनाश के निमित्त कियाथा, अर्थात्-जो भगवत् भक्त होंगे, और जो वैदिक मार्ग में निष्ठा अर्थात् श्रद्धा वाले होगें, वे इस खण्डन से भी मोह को प्राप्त नहीं होंगे। और जो इसके विपरीत होंगे, वे इस खण्डन से भूल में पड़ते हुए इस वैदिक मार्ग से दूर होजांयगे।।यही बात श्रीमद्भागवत् में भी कहा है, कि-"वेद मार्ग में निरन्तर स्थित ऐसे जो देवताओं के द्वेषी, सो मय दैत्य के वनाये शत्रुवोंको आश्चर्य अर्थात् भय उत्पन्न करने वाले अदृश्य (गुप्त) नगरोंमें बैठकर लोकों को नाश करते हुए दैत्यों की बुद्धिको व्यामोह (भरमाने) के निमित्त अर्थात् वैदिक मार्ग त्याग कराने के लिये, और तिनकी बुद्धिको प्रलोभ (वेद विरुद्ध मार्ग अगीकार कराने) के निमित्त पाखण्ड धर्म की व्याख्या करेंगें, भा० २। ७। ३७॥ तात्पर्य यह है कि-बुद्धावतार विषयक "यदा यदा हि धर्मस्यति" इस लक्षण करके अव्याप्ति दोष नहीं मानना, क्यों, कि-असुर वैदिक मार्ग में स्थित होकर धर्म का नाश करते थे। इस लिये बुद्ध भग-

वान् ने पाखण्ड धर्मकी व्याख्या करके उनको बहकाय के, असुरों से वैदिक धर्म का त्याग कराया है, इस से बुद्धावतारभी धर्म रक्षार्थ ही हैं ।

मू०—ननु "जन्म कर्म च मे दिव्यम्" गी० अ० ४ श्लो० ९॥ इति भगवद्वचनादीश्वरावताराणां जन्म कर्मणो दिव्यत्व मुक्तं, श्यामल शरीर त्वादिकं जन्मनो दिव्यत्वं नैव,चेत्तदाकिं दिव्यत्वं, किञ्च कर्मणो दिव्यत्व मपिकिं ज्ञेय मित्या काङ्क्षायां ब्रूमो, जन्मनो दिव्यत्वम् नाम चरमत्वम्, "नमां कर्माणि लिम्पन्ति" गी. अ० ४ श्लो० १४॥ इति भगवद्वचनात्,कर्मणो दिव्यत्व मलेपत्वम् । अथवा भगवता यत्त्व जन्मनो दिव्यत्व मुक्तं तत्तु पूर्णा वताराणां जन्म दिव्यत्व दृष्ट्या कथितं, न त्व वतार मात्र दृष्ट्या, तेषु श्यामलत्वादीनि दिव्यत्वानि सन्त्येव ॥

टी०—शंका—अब "जन्म कर्म चमेदिव्यम्" इस

भगवत वचन से अवतारों के जन्म और कर्म दिव्य कहे गये हैं, सो यहां यह प्रश्न होताहै, कि यदि श्याम शरीरादिक होना जन्मका दिव्यत्व (दिव्य पना) नहीं तो फिर उनमें दिव्यत्व क्या वस्तु है। और उनके कर्म भी दिव्य कैसे माने जायेंगे।इस प्रकारकी आकांक्षा (पूछने की इच्छा) के प्रकट होने पर इसके उत्तरमें हम कह सकते हैं, कि जन्म का चरमपना अर्थात् अन्तिम जन्म (वर्त्तमान जन्म में किये कर्मों के अनुसार दुबारा जन्म) न होनाही दिव्यपनाहै। और "मेरेको शुभाशुभ कर्म लिपाय मान नहीं होते, अर्थात् अन्य जीवों की नाईं हर्ष और शोक तथा जन्म और मरण के देने वाले नहीं होते हैं,क्यों,कि-मैं नित्य मुक्त आनन्द रूप हूं इति" गी०४।४॥ इस भगवत वचन से भी अलेपत्व नाम कर्मोंका लिपाय मान नहीं होनाही कर्मोंका दिव्य पना कहा है। अथवा सच्चदानन्द स्वरूप श्री कृष्ण देवजी ने जो अपने जन्मको दिव्य कहा है, वह तो पूर्ण अवतारों का जन्म दिव्य होने की दृष्टि से कहा है, अर्थात् उनको अलौकिक चतुर भुजादि स्वरूप युक्त होने से कहा है, कोई सामान्य अंश,कला, अवतार मात्र की दृष्टिसे नहीं कहाहै। इस लिये श्रीकृष्ण आदिक में श्याम शरीर चतुर भुजादिक दिव्य पना प्रसिद्ध ही है॥

मू०—ननु "एते चांशकलाः पुंसः, कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" भा० स्क० १ अ० ३ श्लो० २८॥ "मत्तः परतरं नान्यत्, किञ्चिदस्ति धनञ्जय। मयि सर्व मिदं प्रोतं, सूत्रे मणिगणाइव" गी० अ० ७ श्लो ७॥ "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न मेकांशेन स्थितो जगत्" गी० अ० १० श्लो० ४२॥ इत्यादीनि बहूनि प्रमाणानि श्रीकृष्णं स्वयं परमेश्वरं दर्शयन्ति। अतः कथं परमेश्वर निदेशकारी स उच्यते इति चेद्वैष्णव मन्याहोते बुद्धि वैभवम् ॥

टी० शंका—श्रीमद्भागवत् में कहा है, कि—" यह सनकादिक ऋषि जो पूर्व कथन किये अवतार हैं, सो इन में तो कोई अंशावतार हैं, कोई कला अवतार हैं, परंतु श्रीकृष्ण जी तो स्वयं भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं " भा० १।३।२८॥ तिसी प्रकार गीता में भी कहा है, कि "हे अर्जुन! मेरे से जुदा श्रेष्ठ जगत का कारण और कोई नहीं है, जैसे डोरे (सूत्र) में मणि गण, और तन्तुवों म पट पुहिरहे है, तैसे ही मैं ब्रह्म स्वरूप सर्व का कारण तथाअधिष्ठान रूप मेरे विषे यह चराचर

दृश्यमान अव्याकृत से स्थूल पर्यंत सम्पूर्ण जगत पुवा हुआ है" गी० ७।७॥ यह बात श्रुति में भी कहा है, कि-" रसातलादि ब्रह्मान्तान्सर्व लोकान पोद्य, सर्वे लोका आत्मनि ब्रह्मणि मणय इवौताः प्रोताश्च" अर्थ—रसातल से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त सम्पूर्ण लोक व्यापक ब्रह्मरूप आत्मा में मणि के समान पुवे हुएहैं, और गीता में भी कहा है, कि-हे अर्जुन ! मैं ही निर्विशेष परिपूर्ण परमात्मा आपही इस दृश्यमान स्थावर जङ्गम रूप सम्पूर्ण जगत् को एकांश में धारण करके स्थित हूं, गी० १० । ४२ ॥ इत्यादिक बहुत से प्रमाण श्रीकृष्ण देवजी को स्वयं पूर्ण परमेश्वर कथन करते हैं। इस कारण से श्री कृष्णजी को ईश्वर का आज्ञा-कारी आप कैसे कथन करते हैं, इतिचेद् (यदि ऐसे कहें) तो- हे वैष्णवराज ! हे वष्णवं मन्य !! यदि आप ऐसे कहें, तो आपकी बुद्धिकी कला कौशलता को धन्य हैं, अहो बडे आश्चर्य की बात है, कि—यह छोटी सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। अच्छा अब ध्यान देकर श्रवण कीजिये।

मू०—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तत्त्वमसि श्वेत-केतो, छां०उ०॥ "वासुदेवः सर्व मिति स महात्मा सु दुर्लभः" गी०अ०७ श्लो०१९॥ इत्यादीन्यपि

बहूनि श्रुति स्मृति प्रमाणानिकिं त्वां मां सर्वं विश्वं स्वयं परमेश्वरं न वदन्ति;यतः श्रीकृष्णाद्भिन्नान्सर्वानीश्वर निदेश कारिणो मन्य से ॥

टी०—छान्दोग्योपनिषद् में कहा है, कि—"यह सम्पूरण जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है, हे श्वेत केतो ! तुम भी ब्रह्म स्वरूप है" छां-उ०अ०६ ॥ और गीता में भी कहा है,कि-यह सर्व चराचर अस्ति भाति प्रिय रूप जगत वासुदेव रूपही है" इस प्रकार से-सर्व को वासुदेव रूप मानने वाला महात्मा दुर्लभ्य है, गी- ७ । १९ ॥ इससे आदि और भी बहुत से श्रुति स्मृतियों के प्रमाण क्या तुझको, मुझको, और सर्व विश्व को परमेश्वर नहीं बताते, जिससे तुम श्री कृष्णजी के अतिरिक्त और सबको ईश्वर के आज्ञा कारी मानते हो । और भी प्रमाण श्रवण करो—

मू०—"यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्य भिसंविशन्ति तद्धि जिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति " तै० उ० भृ० व० अ० १ म० १॥ इत्यादि श्रुति वचनात्कारणे ब्रह्मण्येव सर्वं विश्व मोत प्रोतश्च ।

टी०—क्यों, कि-यह प्रसंग तैतरी उपनिषद् में भी कहा है, कि-जिस से यह सम्पूर्ण प्राणि मात्र उत्पन्न होते हैं, और जिस कारण रूप परमात्मा करके उत्पन्न हुए, जिसके द्वारा जीवनकूं धारण करते हैं, अर्थात् स्थिति को प्राप्त होते हैं, और अन्त में जिस कारण ब्रह्म में तादात्मय (अभेद) संबंध से लीन होजाते हैं, उसको तुम जानने की इच्छा करो, सोई ब्रह्म है, तै-उ-भृ-व-अ-१ मं-१ ॥ इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणों से कारण ब्रह्म में ही सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोत अर्थात् ताने वाने की तरह पुवा हुआ है ॥ वास्तव दृष्टि से विचार किया जाय तो, पट (वस्त्र) में सूत से अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, इस प्रकार कारण कार्य रूप सर्व ब्रह्म ही है, अर्थात् दृश्यमात्र समपूर्ण प्रपंच ब्रह्म ही है ॥

मू०—"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद स्यामृतं दिवि" ऋ० पु० सू० ॥ इत्यादि मंत्र वर्णाद्ब्रह्मैकांशे सर्वं विश्वं स्थितं तत्तादात्म्य-तया। यथा श्रीकृष्णेनोक्तं तथा वयं यूय मिमे सर्वे वक्तुं शक्ताः सर्वेषां ब्रह्मत्वात् ॥ त्वादृशानांहि दुर्विदग्धानां मनीषा व्यामोहेन मूर्छि-

ता बहवो नास्तिका भवन्ति यतस्त्व मेवं न विजानासि ह्यात्म दृष्ट्यैव श्रीकृष्णः स्वयं परमेश्वरो निरूपितोऽवतार व्यवहारस्तु देह दृष्ट्यैव भवति ।

टी०—और ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी कहा है, कि-"त्रिकाल में होने वाले प्राणीमात्र, इस ब्रह्म के चतुर्थांश है, और उसी पर ब्रह्म का अवशिष्ट त्रिपाद् स्वरूप में अमृत है, अर्थात्-विनाश रहित प्रकाशात्मक स्वस्वरूप में स्थित है, ऋ-पु- सू- ॥ इत्यादि मंत्र प्रमाण से ब्रह्म के एकांश मे संपूर्ण प्रपंच स्थित है, इसी आशय से ही, जैसे गीता में तादात्म्य सम्बध अर्थात्—अभेद संबन्ध से श्रीकृष्ण जी ने कहा हैं, कि मेरे से श्रेष्ठ दूसरा (सृष्टि उत्पत्यादिक का स्वतंत्र कारण) कोई नहीं है, अर्थात् मेरे से भिन्न और कुछ पदार्थ नहीं है। तैसे ही हम तुम और भी ये सब मनुष्य अपने को ब्रह्मरूप कहने कूं समर्थ है, क्यों, कि—श्रुति स्मृति उक्त प्रमाणों कर सर्व को ब्रह्म स्वरूप होने से, तथा यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म के एकांश में स्थित ही है, इस लिये तब तो हम तुम सबको परमेश्वर के साथ अभेद सम्बन्ध वाले होने से संपूण प्राणि मात्र को

ब्रह्म स्वरूपता सिद्ध ही है, उदाहरण-जैसे सुवर्ण का विकार कटा कुण्डलादिक सुवर्ण से जुदा नहीं है, और मृतिका का कार्य घट सरावादिक मृतिका से जुदा नहीं है,और जल का विकार फेन, तरङ्गादिक जल से जुदा नहीं है, वास्तव से जल रूपही है॥ तैसे ही यह सम्पूर्ण प्रपंच ब्रह्म से भिन्न नहीं है॥ तुम्हारे जैसे कोरी चातुराई छाटने वाले विक्षिप्त चित्त हुए मनुष्यों को वहकाने वाले भूले हुए बहुत से नास्तिक होजाते हैं। क्यों, कि-तुम इतना नहीं जानते हो,कि-आत्म दृष्टि से ही श्री कृष्णजी को सूतजीने स्वयं परमेश्वर कहा है। परन्तु अवतार व्यवहार तो उनका केवल देह दृष्टि से कहा गया है॥ इस लिये श्री कृष्ण जी स्वयं परमेश्वर ही सिद्ध हैं, इसमें किसी किसम का भी संदेह नहीं करना चाहिये॥

मू०--किञ्च "मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयाः। बलिं हरन्त्य वनताः किमुतान्ये नराधिपाः" भा० स्क०१० अ० ४५ श्लो०१४॥ इतीदं भगवद्वचनं त्वया किन्न विकल्पितं यत्प्रा-कृत प्राणिन उग्रसेनस्यापि भृत्यता भगवता स्वीकृता। तथाच तत्र तत्र गोप बधू युधिष्ठिर

प्रमुखानां निदेशानु वर्त्तिनः श्रीकृष्णस्य स्वयं परमेश्वरता न दूषिता बभूव । सर्वान्तर्यामिणः परमेश्वरस्य स्वात्म भूतस्य देहेन निदेशानु-वर्तनेन तस्य साकिं दुष्यति । अतोयथा लौकिक व्यवहारे स्वजन निदेशा नुवर्त्तित्वं भग वत स्तथैव देह व्यवहारेण स्वात्मभूत परमे श्वर निदेशानुवर्त्तन मप्युचितम् ।

टी०—दूसरी बात यह भी है, कि श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण जीने राजा उग्रसेन के प्रति कहाहै, कि, "हे राजन् ! मैं भृत्य (सेवक) आपकी आज्ञा में रहने से, तो देवता आदिक भी नम्रता पूर्वक आपको भेटा अर्पण करेंगे, अर्थात् सर्वथा आपके आज्ञाकारी होंगे जब देवता आपके आज्ञाकारी हुए, तब दूसरे सब राजा आपकी भेट करें, तो इसमें संदेह ही क्या है" भा० स्क० १० अ० ४५ श्लो० १४॥ इस भगवत् वचन का आपने विचार क्यों नहीं किया, जो प्राकृत प्राणि (साधारण मनुष्य) उग्रसेन राजा की भृत्यता दास की नाईं सेवा आप ने श्री मुखसे स्वीकार की है । तैसे ही व्रज में गोपियों के आज्ञानुसारी रहे है । और इन्द्र प्रस्थ

(हस्थना पुर) में पाण्डवन के आज्ञाकारी रहे हैं। तिससे तो श्रीकृष्ण जी की स्वयं परमेश्वरता दूषित नहीं हुई कही, और अब सर्वान्तर्यामि स्व आत्म स्वरूप परमेश्वर की केवल देह से आज्ञाकारी होने से, तो इतने मात्र से श्रीकृष्णजी की स्वयं परमेश्वरता कैसे दूषित हो सकती है, अर्थात् कदाचित भी नहीं दूषित हो सके है। इस लिये लोक व्यवहार में जैसे भगवान् अपने भक्तों के अर्थात् उग्रसेन, तथा गोपी जनों के, और युधिष्ठिर आदि के आज्ञा कारी हुए हैं, वैसे ही देह व्यवहार से, अपने आत्म स्वरूप परमेश्वर की आज्ञा पालना भी उचित ही है।

मू०—किञ्च-यथा श्रीकृष्ण वचनात्त्वं सर्वाधारं सर्वं कर्त्तारं विजानासि, तथा " अहोनः परमं कष्ट मित्य साक्षो विलेपतुः" भा० स्क०१० अ० ५७। श्लो० ९॥ इति श्वशुरस्य सत्राजितो वधं श्रुत्वा श्रीराम कृष्णयो विलाप रोदनैस्त-योर्जीवत्वं किन्न समर्पयसि। अतो यथात्र परमार्थ व्यवहार दृष्टि भेदेनोभयं घटते, तथैव-

स्वयं परमेश्वरत्वमीश्वर निदेश कारित्वञ्च सम्भाव्यते ॥

टी० और तीसरे इस प्रसंग का भी ध्यान रखना चाहिये, कि जिस श्रीकृष्णजी के वचन से ही, आप श्रीकृष्णजी को सर्वाधार, तथा सर्व का कारण मानते हो " वैसे ही " हमको बड़ा कष्ट प्राप्त हुआ है, इस प्रकार वे दोनों भ्राता (रामकृष्ण) नेत्रों में जल भर के रोने लगे, भा० १०।५७।९॥ इस वचन से अपने श्वशुर सत्राजित के बध को श्रवण कर, बलदेव और श्रीकृष्ण के विलाप रोदन से, उनको सामान्य जीव क्यों नहीं मानते। इस लिये जैसे यहां पर परमार्थ दृष्टि से, तथा व्यवहारिक दृष्टि से दोनो ही बातें बन सकती हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण जी को स्वयं परमेश्वरता तथा ईश्वर आज्ञाकारी होना दोनों ही सम्भव हैं॥ तात्पर्य यह है, कि, इस प्रकार जितने ईश्वरावतार हैं तिन सर्वमें परमार्थ दृष्टि से ईश्वर व्यवहार रहे है, और व्यवहार दृष्टि से संसारी भाव रहता है, क्यों, कि- दोनों प्रकार के ही चरित्र राम कृष्णादिक ईश्वर अवतारों में शास्त्र के प्रमाणों से श्रवण होते हैं, इसी से ही श्रीकृष्ण स्वयं परमेश्वर तथा ईश्वर आज्ञाकारी सिद्ध होते हैं, यह सिद्धान्त निर्दोष है ॥

मू०—ननु ब्रह्मादिभिः पूज्येन भगवता श्री कृष्णेन गोवर्धन धारणाद्यति मानुष दुर्घट कर्म कारिणा यदुक्तं तत्तुच्छा वयं कथं वक्तुं शक्ता इति चेत्पुन स्त्व मुग्धतां प्रकटयासि मुग्ध !

टी०—शंका-ब्रह्मादिको करके पूज्य तथा गोवर्धन धारणादिक जो मनुष्यों से न होने वाले, कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण देवजी ने जो बात कही है कि "मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय' मयि सर्व मिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणाइव" इत्यादि वचनोंको हम सरीके तुच्छ बुद्धि वाले मनुष्य कैसे कहे सकते हें। इति चेद् इस प्रकार से यदि तुम फिर शंका करते हो, तो हे मुग्ध! तुम फिर अपनी अज्ञता बहिर्मुखता को ही प्रकट करते हो, अब इन श्रुति वचनों को फिर श्रवण करो, जिससे आपके सब संदेह निवृत्त होजावें।

मू०—"एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योःसमृत्यु माप्नोति यइह नानेव पश्यति" क० उ० "एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्व

[1]नोट—इस स्मृति का अर्थ पीछे कर आये हैं ७६ के पृष्ठ में।

व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ॥ कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" श्वे० श्व० उ० अ० ६ म० ११ ॥ इत्यादयः शतशः श्रुतय एकात्मतां घोषयन्ति । आत्म दृष्ट्यास्वसर्वाधारत्वं वक्तुं सर्वेऽर्हा, उक्तञ्च पूर्वं, पारमेश्वर गुणाधिक्येन श्री कृष्णादयः परमेश्वरा वताराःसर्वै रुपास्या नत्वात्मा धिक्येने-त्यलं सर्वमत्रा नवद्यम् ॥

टी०—और कठ उपनिषद् में भी कहाहै, कि-"सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदसे रहित एक अद्वितीय ब्रह्म है" तथा 'इस ब्रह्ममें नाना नाम रूपात्मक प्रपंच वास्तव से किंचित मात्र भी नहीं है'। और जो पुरुष इस अद्वितीय ब्रह्म में भेद दृष्टि से नाना पने को देखता है, वह बारंवार जन्म मरण को प्राप्त होता है" क० उ० ॥ तैसे ही श्वेता श्वतुर उपनिषद् में भी कहा है, कि "आत्मा एक अर्थात् अद्वितीय है, और तेजोमय (प्रकाश स्वरूपहै) सर्व प्राण धारियों में गूढ (गुप्त वा दुर्लक्ष्य) है, सर्व जीवों का अन्तर आत्मा है, और सर्व प्राण धारियों के नाना कर्मों का अधि-

ध्याता अर्थात् शुभ अशुभ कर्मों का फल देने वाला है, तथा सर्व प्राणियों में जो निवास करें है वा सर्व जीव जिस कारण में निवास करें है, सर्वका साक्षी है, और सर्व अनात्म जड़ समूह को चेतन करे है, तथा केवल निरुपाधिक है, तथा माया के सत्त्वादि गुणों से रहित है, यद्यपि आत्मा सर्वत्र व्यापक है, तथापि हृदय स्थान में तिसकी उपलब्धि प्राप्ति होती है, इसलिये हृदय में स्थित कहा है" ॥ श्वे०श्व० अ० ६ मं०११इत्यादि सैंकड़ों श्रुतियां तिस नाम रूपात्मक प्रपंच की 'एकात्मता' ब्रह्मैक स्वरूपता को घोषयन्ति घोषणा करती हैं, अर्थात्—सम्पूर्ण प्रपंचको ब्रह्म स्वरूप ही उच्ची स्वर से उच्चारण करती हैं, तब हम तुम सर्वही ब्रह्म स्वरूप सिद्ध हुए, और जैसे श्रीकृष्ण जी ने कहा है 'मत्तः पर तरंनान्यत्' अर्थात् मेरे से दूसरा अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है" तैसे आत्म दृष्टि अर्थात्-अभेद सम्बन्ध से हम सर्व मनुष्य अपने को, सर्व का आधार, साक्षी, चेता सर्व व्यापक निर्गुण मुक्त मुख से क्यों नहीं कह सकते अर्थात् कह सकते हैं। यह बात प्रसंगानुसार पहले हम कह भी आये हैं, कि-परमेश्वर सम्बन्धी गुणों के अधिक होने से परमेश्वर के अवतार श्रीकृष्णादिक की सर्व मनुष्य मात्र को उपासना करनी चाहिये, न कि-आत्मा की अधि-

कता से, क्यों-कि-श्रीकृष्णजी के और हमारी आत्मा में न्यूनाधिक भाव नहीं है ॥

इस लिये अवतारों के विषय में श्रुति स्मृति युक्ति अनुसार जो कुछ विचार किया है, सो सर्व निर्दोष है। इस वास्ते अब इस विषय को समाप्त करते हैं ॥

मू०—"ईश ईशावतारो वा, कृष्णो भवतु मानवः।
तस्मादन्यं न जानामि, सर्वस्वं सहि मामकम्॥१॥

टी—अब ग्रन्थकर्त्ता श्रीमत्परमहंस निखिल शास्त्र निष्णात ब्रह्मनिष्ठ कविकुल भूषण श्री स्वामी कार्ष्णि गोपालदास जी महाराज श्रीकृष्णजी के विषय अनन्य प्रेम को, तथ स्वअनुभव को प्रगट करके कहते हैं, कि-श्रीकृष्णजी चाहे ईश्वर हों, अथवा परमेश्वर के अवतार हों, या मनुष्य हों। परन्तु हमारे तो सर्वस्व श्रीकृष्ण ही हैं, तिस श्रीकृष्ण जी के बिना दूसरे को हम जानते ही नहीं हैं, इतने करके ग्रन्थ करता ने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण जी को ही प्रगट किया है, यदि इनका श्रीकृष्ण जी में विस्तृत प्रेम देखना हो, तो आपका बनाया हुआ "कार्ष्णि करुणाभर्ण व्रजवासोल्लास" मंगवाकर देखें, तो स्वयं ही आपको अनुभव हो जायगा, कि भगवत् प्राप्ति का मार्ग कैसा है, और किस रस्ते चलने से भगवत् का कृपा पात्र यह जीव हो सकता है ॥

इस प्रकार अवतार विषय की सर्व शंकाओं के निवृत्त होने से, पूर्व पक्षी पूर्व प्रति ज्ञात दूसरे विषय में प्रश्न करने की इच्छा से अवतरणिका को प्रारम्भ करता है ॥

मू०—ननु—मया तु नैवालं कृतं भवान् कथ मलं करोतीति चेत्पृच्छ किं प्रष्टु मिच्छसी त्यनुज्ञातः पुनः पृच्छति ॥

टी०—प्रश्न—हे सिद्धान्ति ? मैं ने समाप्ति तो नहीं की' आपने उपसंहार (समाप्ति)क्यों करदीया, हे पूर्व पक्षी ? यदि ऐसा कहते हो, तो पूछो ! क्या पूछना चाहते हो ! इस तरह अनुमति (आज्ञा) को पाकर पूर्व पक्षी फिर पूछता है ॥

मू०—ननु—कथं कार्ष्णि शब्द इञन्तः स्वीकृतः "अतइञ्" । ४।१।९५।। अनेन सूत्रेण चेत् "ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च"।४।१।१४।। अनेन वृष्णि ष्विञोऽपवादादण् विधानाच्च कार्ष्णि रित्यत्रेञन्तता पाणिनि मत विरुद्धेति चेत्तर्ह्युच्यते ।

टी०—प्रश्न—कार्ष्णि शब्द इञ् प्रत्ययान्त कैसे सिद्ध होता है' क्यों, कि—' कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णि' यहां कृष्ण शब्द से अपत्य अर्थमें ' अतो इञ् ' इस पाणिनि सूत्र से इञ् प्रत्यय करके कार्ष्णि शब्द सिद्ध होता है, उस (अत इञ्) सूत्र का अपवाद अर्थात् निषेध करता " ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च " इस सूत्र से कृष्ण को वृष्णि वंशमें उत्पन्न होंने से, तो कृष्ण शब्द से, अण् प्रत्यय होना चाहिये, जिससे कार्ष्णः ऐसा शब्द सिद्ध होय है। इस लिये कार्ष्णि शब्द का इञन्त होना पाणिनि मत से विरुद्ध है ॥ हे पूर्व पक्षी ! यदि ऐसी शंका करो, तो इसका उत्तर यह है-

मू०—"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्ति वाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते " ॥१॥

इति निर्वचनात् सच्चिदानन्द परिपूर्ण परमेश्वर एव कृष्ण शब्द वाच्य स्तत्र तावद् वृष्णित्व मेव नास्ति यत इञ् प्राप्ति स्स्यादतः। " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" तै०उ० भृ० व० प्र० अ० मं० १ जन्मा द्यस्ययतः" ब्र०

सू० २ ॥ " पिता ह मस्य जगतो माता धाता पिता महः" गी० अ० ९ श्लो० १७॥ इत्यादि श्रुति शास्त्र प्रमाणादुक्तलक्षणाच्छ्री कृष्णाज्जाताः कार्ष्णय उच्यन्ते ।

टी०— समाधान—कृष्णजी को वृष्णि कुल में उत्पन्न समझकर यह कार्ष्णि शब्द नहीं सिद्ध किया, किन्तु कृष्ण शब्द का निर्वाचन इस तरह से किया जाता है- कि-"कृषि शब्द सत्ता का वाचक (बोधक) है' णकार आनन्द का वाचक है' तिन दोनों पदों की एकता से सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म ही कृष्ण शब्द का अर्थ सिद्ध होता है । अर्थात्—सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न, पालन, लय, करनेवाला सच्चिदान्द स्वरूप परब्रह्म कृष्ण ही है । इससे यह सिद्ध है-कि-सत्तामात्र, आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा का ही मुख्य नाम कृष्ण है । उस कृष्ण को वृष्णि कुल में उत्पन्न न होने से "ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च" इस सूत्र से अण् प्रत्यय न प्राप्त होकर' पूर्वोक्त "अतो इञ" इस सूत्र से इञ् प्रत्यय ही प्राप्त होता है' इसलिये तैत्तिरि श्रुति में भी कहा है' कि-"जिस परब्रह्म परमात्मा से यह संम्पूर्ण प्राणिमात्र उत्पत्ति, स्थिति लय को प्राप्त

होते हैं" ते उ० भृ० व० प्र० अ० मं० १ ॥ और ब्रह्मसूत्र में भी कहा है, कि—"जिस सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान कारण से इस आकाशादिक प्रपंच के जन्म स्थित लय होता है सोई ब्रह्म है" ब्र० सू २ ॥ तैसे गीता में भी कहा है, कि—"इस जगत् का माता, पिता, बिधाता, पालक, पितामहा मैं हूं" गी० ९। १७॥ इत्यादिक श्रुति शास्त्रोक्त परमाणों से तथा लक्षणों से श्रीकृष्ण से उत्पन्न भये सब प्राणि कार्ष्णि कहलाते हैं।

मू०—ननु—केते कार्ष्णय इति चेत्सर्वे एव, यथा ब्रह्मणो जाताः सर्वे विप्रा ब्राह्मणा मनो र्जाता स्सर्वे मनुष्या मानवा मनुजाश्च कथयन्ते ॥

टी०—प्रश्न—जिनको तुम कार्ष्णि मानते हो, वे कार्ष्णि कौन से हैं, यदि आप ऐसे पूछते हैं, तो इसका उत्तर यह है, कि-जैसे ब्रह्मा से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विप्र ब्राह्मण कहे जाते हैं, और मनु से उत्पन्न हुए सब मनुष्य मानव या मनुज कहे जाते हैं, वैसेही सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णजी से उत्पन्न हुए हम तुम सर्व ही कार्ष्णि कहे जाते हैं। इस प्रकार

से हम सबको कार्ष्णि मानते हैं, अब और जो पूछना हो सो भी पूछो।

मू०—ननु—सर्वे स्वात्मानं कार्ष्णिं नैव मन्यन्त इति चेन्मा मन्यन्ताम्। "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" "तत्त्व मसि श्वेतकेतो" छां० उ० ॥ इत्यादि श्रुति सिद्धमपि स्वब्रह्मत्वं ये नैव मन्यन्ते किं तेषु तन्नैव। यथाच श्रीरामादिभ्यो दाशरथित्वे सत्यपि राघवत्वं नापयाति। एवं शैव शाक्तादि मात्मानं मन्वाने ष्वपि ब्रह्म रूप श्रीकृष्णापत्यत्वात् पूर्वं सिद्धं कार्ष्णित्वं स्थास्यत्येव।

टी०—प्रश्न—हे सिद्धान्ति! आपने जो कहा है सो सबही श्रेष्ठ है, परन्तु सर्व मनुष्य अपने को कार्ष्णि क्यों नहीं मानते, हे वादि! यदि तुम ऐसी शंका करो, तो इसका उत्तर यह है, कि-वे मत मानें, उनके लिये हम क्या करें। किन्तु-ब्रह्म के साथ हम सर्व की एकता तत्व मसि आदि वेद वाक्यों करके सिद्ध है, जैसे कि-छांदोग्योपनिषद् में कहा है, "निसंदेह यह सर्व जगत् ब्रह्म स्वरूप है" छां० उ० अ० ३॥ इस श्रुति के प्रमाण से, तथा "वासुदेव सर्व मिति" गी० अ० ७

श्लो० १९ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् वासुदेव भगवान् स्वरूप ही है" गी० ७। १९ ॥ और छान्दोग्योपनिषद् के षष्ठे अध्याय में उद्दालक ऋषि श्वेतुकेतु से कहते हैं, कि-हे श्वेतुकेतु ! इस सर्व चराचर रूप जगत् की उत्पाति स्थिति प्रलय जिस परब्रह्म रूप परमात्मा से होवे है, सो ब्रह्म तू है" छां० उ० अ० ६॥ तैसे ही बृहदारण्य कोपनिषद् के प्रथम अध्याय में भी कहा है, कि-" य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मि सइदꣳ सर्वं भवति" बृ० उ० अ १ ॥ अर्थ-देवता मनुष्य, तथा ऋषियों के मध्य में जो कोई, मैं ब्रह्म हूं, ऐसे जाने हैं, सो ज्ञानी इस सर्व रूपता को अर्थात्-सर्वात्म भाव को प्राप्त होता है" बृ० उ० अ० १ ॥ इत्यादि श्रुति स्मृति प्रमाण से हम सर्व ब्रह्म स्वरूप ही हैं; और यद्यपि व्यवहार में अज्ञान वश से " अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार से सर्व को भी स्वस्वरूप ज्ञान नहीं होता है, किन्तु-अज्ञान निवृत्ति से ही होता है-तथापि वैदिक प्रमाणो से सिद्ध जीव ब्रह्म की एकता तो कभी भी अप्रमाण नहीं हो सकती है । दृष्टान्त-जैसे कोई द्विजाती कुसंग से मदरा पान करके उन्मत्त हुआ कहे, कि-मैं चण्डाल हूं, द्विजाती नहीं हूं; तो उसके सहचारी कहे, कि-तुम चण्डाल नहीं द्विजाती हो, यद्यपि वो परवश हुआ

नहीं मानता है, तथापि वास्तव से तो द्विजाती ही सिद्ध है, चण्डाल नहीं " तैंसे ही अज्ञानी पुरुष अपने को चाहे कैसा ही माने, परन्तु ज्ञानी पुरुष तो अपने को कार्ष्णि ही मानेंगे, और उनका मानना भी वैदिक प्रमाण से सिद्ध अर्थात्–निर्दोष ही है " उदाहरण–जैसे श्रीरामचन्द्र जी दाशरथि (दशरथ के के पुत्र) लोक प्रसिद्ध भी थे, परन्तु रघुकुल में उत्पन्न होने से वे राघव भी कहे जाते थे–अर्थात् उनका राघवपना दूर नहीं हुआ है। इस प्रकार जो अपने को शैव शाक्त इत्यादि मानते हैं, परन्तु वास्तव से विचार करें, तो वे पर ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण के अपत्य स्थानापन्न होने से अर्थात् पुत्र पौत्रादिक रूप से, पूर्वोक्त श्रुति स्मृति लक्षणानुसार कार्ष्णित्व-कार्ष्णि नाम उनका सिद्ध ही है-भावार्थ यह है कि-कार्ष्णि नाम उनका कभी भी नष्ट नहीं हो सकता किन्तु बना ही रहता है ॥

मू०—अथवा-यद्यपि-तज्जत्वात्सर्वे कार्ष्णय स्तथापि। "उत्तम श्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्त कारी तु मध्यमः अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्त्तोच्चरितं पितुः" भा० स्क० ९ अ० १८ श्लो० ४४॥ अनेन

पितु राज्ञा पालनादि भक्ति मानेव पुत्रोऽन्येतु तत्पुरीष प्राया एवम् "श्रुति स्मृती ममैवाज्ञे" इति भगवद्वचनाच्छ्रुति स्मृत्युक्त श्री कृष्णाज्ञा पालनादि भक्ति मन्त एव कार्ष्णय उच्यन्ते नतु सर्वे ॥

टी०–अब दूसरे प्रकार से समाधान करते हैं–यद्यापि पर ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण जी से उत्पन्न होने के कारण सभी कार्ष्णि ही सिद्ध होते हैं, तथापि " उत्तम वही है, जो बिना कहे से करे, और मध्यम वह है, जो कहने पर करै, और अध्यम वह है, कि–जो कहने पर भी अश्रद्धा से करे, इस तरह तीन् प्रकार के पुत्र हैं, परन्तु–चौथे प्रकार का, जो कहने पर भी आज्ञा का पालन न करे, वह पुत्र नहीं है, किन्तु–वह माता पिता के मल के समान है " भा० ९ । १८ । ४४ ॥ इस भागवतोक्त न्याय से–पिता के आज्ञा पालनादि में श्रद्धा–भक्ति वाला ही श्रेष्ठ पुत्र है । इसी तरह " वेद और धर्म शास्त्र मेरी आज्ञा है" इस भगवान् के वचनानुसार श्रुति स्मृतियों में कही गई श्रीकृष्ण जी की आज्ञा पालन में भक्ति वाले ही कृष्ण के पुत्र कार्ष्णि कहे जाते हैं, सब कार्ष्णि नहीं हो सकते हैं ॥

मू०--अथवा-मनुष्यावतार दृष्ट्या तद् वृष्णित्वेपि "बाह्वादिभ्यश्च" ४।१।४५॥ अनेन र्षिवृष्णिषु केचिद्वैयासकि कार्ष्ण्यादय इञन्ता अपि श्री व्यासादिभिरङ्गी कृता स्तथाहि । "किमन्यत् पृष्टवान् भूयो वैयासकिमृषिं कविम्" भा० स्क० २ अ० ३ श्लो १३ ॥ "हरेर्गुणाक्षिप्त मति भंगवान् बादरायणिः" भा० स्क० १ अ० ७ श्लो० ११ ॥ "अथ हो वाचो द्दालक मारुणिम्" छां०उ०अ० ५॥ वैदिर्गार्गिरौद्दालकि रित्यादा वृषि वाचकेभ्यो पीञ्" इति भट्ट वासुदेवः ॥

टी०--अब प्रकारान्तर से कहते हैं, कि--अथवा मनुष्यावतार दृष्टि से श्रीकृष्णजी को वृष्णि होने पर भी "बाह्वादिभ्यश्च" इस सूत्र करके ऋषि वाचक तथा वृष्णि वाचक शब्दों में, वैयासकिः कार्ष्णिः आदिक इञ् प्रत्ययान्त व्यासादिक महऋषियोंने अँगीकार किये हैं। सोई श्रीमद्भागवत में कहा भी है, "किमन्यत्पृष्टवान् भूयोवैयासकि मृषिंकाविम्" अर्थ--पुनः व्यासजी के पुत्र ऋषि सर्वज्ञ शुकदेवजी

से राजा परीक्षित क्या पूछता भया" भा० २। ३। १३॥ यहां पर व्यास शब्द को, ऋषिवाचक होने पर भी, "ऋष्यन्धक वृष्णिकुरु भ्यश्च" इस सूत्र से अण् प्रत्यय नहीं हुआ, किन्तु बाह्वादिगण पठित होने से, वैयासकि ऐसा इञन्त प्रयोग सिद्धि होता है। इसी तरह "हरेर्गुणाक्षिप्त मतिर्भगवान् बादरायणि" भा० १। ७। ११॥ अर्थ "भगवान् के गुणों में लगी है बुद्धि जिनकी, ऐसे जो भगवान् (बादरायणि) व्यासजी के पुत्र श्री शुकदेवजी" इस जगह पर 'बादरायणि' शब्द है, और छान्दोग्योपनिषद् में भी कथन किया है कि-"अथहो वाचोद्दालक मारुणिम्" उद्दालक ऋषि से श्वेतकेतु कहते भये" इस जगह पर आरुणिम्—शब्द है, तैसेही वैदिः, गार्गिः, औद्दालकिः इत्यादि प्रयोगों को ऋषि वाचक होने पर भी इञ् प्रत्ययान्तही सिद्धि किया है, इस प्रकार वासदेव भट्ट ने कहा है।

मू०—"प्रसज्जतीं तु तामाह कार्ष्णिः कमल लोचनाम्" वि० पु० अं० ५ अ० २७ श्लो० १४ "नाति दीर्घेणकालेन स कार्ष्णी रूढ यौवनः" भा० स्क० १० अ० ५५ श्लोक १०॥ "मुमुचेऽस्त्र मयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः"

भा० स्क० १०अ० ५५ श्लोक २१ ॥ "तामाह भगवान् कार्ष्णिः" भा० स्क० १०अ० ५५ श्लोक ११ ॥ विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्युम्नेः सु महात्मनः" वि० पु० अं० ५ अ० २८ श्लो० ११ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्य्यङ्के प्राद्युम्निं योग मास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणित पुरं सख्यै प्रिय मदर्शयत्" भा० स्क० १० अ०६२ श्लो० २३ ॥ "रेमे प्राद्युम्निना समम्" इति तत्रैव श्लो० २४ ॥ "शूरः शौरि र्जनेश्वरः" इति विष्णोर्नाम्नां सहस्रे ॥ "श्री निकेतं वपुः शौरेः" भा० स्क० १०अ० ८२ श्लो० २७ ॥ "देवकी नन्दनः शौरिः" इत्यमरः ॥ अस्य व्याख्यायां भट्टोजि दीक्षितात्मज भानुजि दीक्षितेन "शूरस्या पत्यं तद्वंशजत्वाद् वृष्णित्वेपि बाह्वादित्वादिञ्" इत्यनेन शौरिरिञन्तो राद्धः ॥

टी०—और विष्णु पुराण में भी कहा है, कि- "कमलके सदृश हैं नेत्र जिसके तथा अत्यन्त अनुराग करके पूर्ण होरहा है हृदय कमल जिसका, ऐसी

मायावती रती से 'कार्ष्णि' श्रीकृष्णजी के पुत्र प्रद्यु-म्नजी कहते भये, वि० पु० ५। २७। १४॥ सो यहां पर भी मूल में कार्ष्णि शब्द आया है । तैसे ही श्रीमद्भागवत् में भी कहा है, कि- फिर थोड़ेही समय में वह कार्ष्णि अर्थात्—श्रीकृष्णजी का पुत्र प्रद्युम्न तरुण अवस्था को प्राप्त होता भया" भा० स्क० १० अ० ५५ श्लो० १०॥ इस जगह पर भी मूल में कार्ष्णि शब्द आया है । और तिस भागवत् में यह भी कहा है, कि वह-" शम्बरासुर भी मयासुर की उपदेश करी हुई अन्तर्धान होजाना रूप विद्या का आश्रय करके "आकाश में स्थित हो, प्रद्युम्न के ऊपर शस्त्रों की वर्षा करता भया" भा० स्क० १० अ० ५५ श्लो० २१॥ यहां पर भी मूल में कार्ष्णौ शब्द आया है। और "तामाह भगवान् कार्ष्णिः" तब वह भगवान् कृष्णजी के पुत्र, उस मायावति से कहने लगे, भा० स्क० १० अ० ५५ श्लो० ११॥ इत्यादि स्थानों पर प्रद्युम्नजी को कार्ष्णि प्रयोग ही व्यासजी ने दिया है तथा विष्णु पुराण में भी कहा है कि—"महान् उदार मन वाले "प्राद्युम्नेः" अर्थात्—प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह जब होचुका, तब वि० पु अ० ५ अ० २८ श्लो० १०॥ तिसी प्रकार भागवत में

लिखा है, कि—"तहां सुन्दर पलंग पर सोये हुए प्राद्युम्नि प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध जी को, योग सिद्धि के प्रभाव से लेकर, फिर शोणित नगर में आगई, और उसने उषा सखी को उसका प्रिय पति दिखाया" भा० स्क० १० अ० ६२ श्लो० २३॥ तिसी अध्याय में यह भी श्लोक है, कि—उस अनिरुद्ध के साथ क्रीड़ा करने लगी, २४॥ इत्यादि स्थानों में 'प्राद्युम्नि' शब्द कहा है॥ और "शूरः शौरिर्जनेश्वरः" यहां विष्णुसहस्रनाम में शौरि शब्द इञन्त अर्थात् इञ् प्रत्ययान्त सिद्ध किया है। तथा—"श्रीनिकेतं वपुः शौरेः" भा० स्क० १० अ० ८२ श्लो २७॥ तात्पर्य लक्ष्मी के पति तथा अत्यंत शोभायमान् शरीर जिनका ऐसे श्रीकृष्णजी को देखके सर्वाश्चर्यमय होते भये" भा० १०।८२।२७॥ यहां पर भी शौरि शब्द आया है। "देवकीनन्दनः शौरिः" देवकी के प्रिय पुत्र श्रीकृष्णजी, इस अमरकोश की टीका में भट्टोजी दीक्षित के पुत्र भानुजी दीक्षित कहते हैं, "कि शूर 'वसुदेव' को वृष्णिकुल में उत्पन्न होने से अर्थात् वृष्णि वाचक होने पर भी—शूर शब्द को "बाह्वादि-गण" पठित होने से ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च इस सूत्र करके अण् प्रत्यय न करते हुए 'बाह्वादिभ्यश्च' इस सूत्र से इञ् प्रत्यय करके शौरिही सिद्ध कियाहै।

मू०—उदाहृतश्च कार्ष्णि रिति सारस्वते व्याकरणेपि ॥ वृष्णिष्वणन्तास्तु वासुदेवादयः केचन ज्ञेया नतुसर्वे ॥ कृष्णस्या पत्यं कार्ष्ण इत्यणन्तः कुत्रापि व्याकरणे नोदाहृतो नच शास्त्रेषुदृष्ट श्श्रुतश्च ॥ अदृष्टाश्रुतस्य स्वीकरणं मयुक्तं मतः श्रुतदृष्टत्वात् कार्ष्णि रेव साधु प्रयोगो मन्तव्य इति ॥

टी०—और सारस्वत व्याकरण में भी कार्ष्णि यह ही उदाहरण दिया है। और वृष्णि वाचक शब्दों में, "ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च" इस सूत्र से अण् प्रत्ययान्त निष्पन्न केवल वासुदेवादिक थोरे शब्द ही दिखाई देते हैं, किन्तु सभी वृष्णि वाचक शब्द अण् प्रत्ययान्त नहीं है॥

और "कृष्ण का अपत्य कार्ष्ण" अर्थात्–कृष्ण का पुत्र कार्ष्ण है, इस अर्थ में कार्ष्ण–ऐसा अणन्त प्रयोग का, तो, किसी व्याकरण में उदाहरण नहीं दिया है। और जो देखा वा सुना ही नहीं, तो–उसका मानना ही अयुक्त अर्थात् युक्ति रहित निष्फल है। इसलिऐ सुना जाने से भी तथा शास्त्रों में देखा जाने से भी कार्ष्णि प्रयोग (शब्द) इञ् प्रत्ययान्त ही साधु

श्रेष्ठ है। और सो ही हम सबको मन्तव्य-अर्थात् मानने योग्य है॥

मू०—नन्वस्तु कृष्णादिञ्, परञ्चाधुना तद्वंशोच्छेदात् कथमिदानीन्तना आत्मानं कार्ष्णिं मन्यन्त इति नचवाच्यम्॥ वंशो द्विविधः पुत्र पौत्रादि शिष्य प्रशिष्यादिश्च, तदुक्तं चन्द्रकीर्त्ति वैयाकरण सूरिणा, "अपत्ये पुत्र पौत्रादि सन्ताने शिष्य प्रशिष्यादि सन्ताने वाच्ये सति" इत्यादिकम्॥ यद्यप्यधुना तत्पुत्रादि वंशस्योच्छेदोस्ति, परञ्च शिष्यादि वंशस्येदानी मपि सद्भावो वर्तते, तथाहि श्री कृष्णस्य प्रथम शिष्या अर्जुनोद्धवादयो बभूवु स्ततो गीता भागवतोक्तःपरम गुरो श्रीकृष्णस्यो पदेशो गुरु परम्परयायैरस्मदादिभि रुपलब्धो, येचतंग्रहीष्यन्ति, तेश्रीकृष्णस्य शिष्य वंशापत्यत्वात् कार्ष्णयो ज्ञेयाः॥

टी०—हे सिद्धान्ति! कृष्ण शब्द से अपत्यार्थ में बाह्वादिभ्यश्च इस सूत्र से इञ् प्रत्यय होने में हमारे

को कोई वैमत्य अर्थात् विरोध नहीं है। परन्तु आज कल श्रीकृष्ण के वंश का उच्छेद (नाश) होने से फिर इदानी काल के मनुष्य अपने को कार्ष्णि किस प्रकार मानते हैं। इस लिये श्रीकृष्णजी के वंश को इस काल में नहीं होने से अपने को कार्ष्णि मानना सर्वथा व्यर्थ है। इति ॥ तो इसका उत्तर यह है—हे पूर्व पक्षी! ऐसा संदेह तो आपको कभी भी नही होना चाहिये। क्यों—कि—वंश दो प्रकार का होता है। एक तो पुत्र पौत्रादि परम्परा से, और दूसरा शिष्य प्रशिष्यादि परम्परा से चला आता है। यह बात चन्द्रकीर्त्ति वैयाकरण सूरि (पण्डित) ने भी कहा है, कि—अपत्य के पुत्र पौत्रादि संतान, और शिष्य प्रशिष्यादि संतान ये दो अर्थ हैं॥ यद्यपि श्रीकृष्ण के पुत्र पौत्रादि वंश का नाश आज कल हो गया है, तथापि-शिष्य प्रशिष्यादि वंश तो आज कल भी विद्यमान है। सो इस तरह से श्रीकृष्णजी के सब से प्रथम शिष्य अर्जुन और उद्धवादिक हुए हैं। तद्अनन्तर गीता भागवत् में कहे परम गुरु श्रीकृष्णजी के उपदेश को गुरु परम्परा से हम जैसे जिन मनुष्यों ने ग्रहण किया है, और करेंगे, उन सब को श्रीकृष्णजी के शिष्य वंश के अपत्य (पुत्र) होने से कार्ष्णि जानने चाहिये ॥

मू०—अथवा गौण्या श्रीकृष्णस्य पुत्रत्वमपी-दानींतनेष्वस्ति तथाहि "सपिता सांच जननीयौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत्" भा० स्क० १०अ० ४५श्लो० २२ ॥ इत्यादि वचनात्पालकोपि पिता भवति, "उत्तमाश्चिन्तितं कुर्यात्" इति पूर्वोक्त प्रमाणा त्पितु राज्ञा पालनादि भक्तिमान्हि पुत्रः ॥ "मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु" गी० अ० १८ श्लो० ६५ ॥ इत्यादि स्वाज्ञा पालनादि भक्ति मताम् "तेषां नित्याभि युक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहम्" गी० अ० ९ श्लो०२२॥ अनेन भगवता पालनं स्वयमेव स्वीकृत मतः पाल्य पालकत्वेनो पास्यो पासकत्वेनच भगवद्भागवतयोःपित्र पत्य भाव सम्बन्धो स्त्येव ॥

टी०—अब दूसरे प्रकार से कथन करते हैं, कि अथवा आज कल के मनुष्य गौणीवृत्ति से श्रीकृष्णजी के पुत्र भी कहे जासकते हैं, क्यों कि—श्रीमद्भागवत् मे कहा है कि "वही पिता है तथा वही माता है जो

अपने पुत्र के समान पालन करता है।" भा० १०। ४५। २२॥ इस भागवत वचन का पालन करनेवाला भी पिता होता है। और श्रीमद्भागवत में कहा है, कि-"तिस में भी जो पुत्र, पिता के मन में का कार्य (बिना कहे ही) करता है, वह उत्तम है। जो कहा हुआ कार्य करता है वह मध्यम है। जो कहे हुए कार्य को श्रद्धा रहित होकर करता है वह अधम है। और जो पिता के कहे हुए कार्य को अश्रद्धा से भी नहीं करता है, वह पिता के विष्टा के समान है। भा० ९। १८। ४४॥ इत्यादि पूर्वोक्त प्रमाणों से पिता की आज्ञा मानना आदि भक्ति वाला ही पुत्र होता है॥ तैसे गीता में भी श्रीकृष्णजी ने आज्ञा की है, कि-मेरे विषे ही मन वाला हो, और मेरा ही भक्त हो, मेरी ही पूजा करे, और मेरे को ही नमस्कार करे। गी० अ० १८ श्लो० ६५॥ इत्यादि गीतामें कही गई भगवान् की आज्ञाओंके पालन की भक्ति रखने वाले उनका और "जो पुरुष नित्य ही मेरे परायण हैं तिनको योग (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति) को, तथा क्षेम (प्राप्तिकी रक्षा) को मैं प्राप्त करता हूं" गी० अ० ९ श्लो० २२॥ इस वचन से पालन करना भगवान ने स्वयं अङ्गीकार कियाहै। इस लिये पाल्य (पालन के योग्य) पालक (पालन करने वाला) उपास्य (उपासना के योग्य भगवान का विग्रह)

उपासक (उपासना करने वाला भक्तजन) भाव से भगवान का, और भगवद्भक्तों का परस्पर पिता पुत्र भाव सम्बन्ध अवश्य ही हैं ॥

मू०—यथाच "जन्मना जायते शूद्रः संस्कारै र्द्विज उच्यते" इति स्मृति वचनाद् द्वितीय जन्मा भावेपि संस्कार मात्रेण पुरुषो द्विजो द्विजन्मेत्युच्यत एवं मुख्यापत्यत्वा भावेपि भक्त्यैवेदानीन्तनेषु कृष्णा पत्यत्व सम्भवः ॥

टी०—और जैसे स्मृति में कहा है, कि "जन्ममात्र से तो मनुष्य शूद्र होता है, परन्तु उपनयनादि संस्कार से, वह द्विज कहा जाता है" इस धर्म शास्त्र के वचन से, दूसरा जन्म न होने पर भी, केवल उपनयन संस्कार मात्र से ही मनुष्य द्विज या द्विजन्मा कहा गया है, इस तरह, यद्यपि आज कल के मनुष्य श्री कृष्ण के मुख्य पुत्र नहीं भी हैं, तथापि भक्ति (भगवत आज्ञा पालनादि) से श्रीकृष्ण के पुत्र माने जा सकते है, अर्थात् इस प्रकार कृष्ण शब्द से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय द्वारा आज कल के हम सर्व निसंदेह कार्ष्णि सिद्ध हो सकते हैं।

मू०—नन्वस्तु त्वदुक्तं परञ्चान्य वंशोद्भवो

ऽन्यस्यापत्यं न भवति, यतोऽपत्यप्रत्यय स्स्यात्, स्वगोत्रजो ह्यपत्यं भवति, तत्रह्यपत्य प्रत्ययः स्वीकृतो नतु कृत्रिमे पुत्र इति नच वाच्यम् ॥

"क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता । भूतलादुत्थितासा तु व्यवर्द्धत ममात्मजा" बा० रा० बा० का० स० ६७ अस्माज्जनक वचनाद्यथा भूमिजापि सीता जनकेना पत्यतया स्वीकृता जानकी त्युच्यते । एवं द्रौपदीच ।

टी०–प्रश्न–हे सिद्धान्ति ! तुमने जो समाधान किया है, सो समीचीन नहीं है,क्यों, कि-दूसरे वंश में उत्पन्न हुआ मनुष्य दूसरे का पुत्र नहीं हो सकता, इस लिये अपत्य प्रत्यय (इञ्) नहीं होगा, क्यों, कि-जो अपने गोत्रका अपत्य होता है, उसी जगह अपत्यार्थक प्रत्यय होता है, कृत्रिम पुत्रमें अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं स्वीकार किया है ।

हे पूर्व पक्षी ! यह आपका प्रश्न भी विना विचार

से ही है, क्योंकि "खेत को कर्षण करते (जोतते) हुए, मैंने भूतल (पृथ्वी) से उत्पन्न हुई सीता नामकी यह अपनी कन्या पाई है" वा० रा० बा० का० स० ६७॥ इस वाल्मीकि रामायण में जनक के वचनसे भूमी से उत्पन्न हुई भी सीताको, जनकने अपनी पुत्री माना है। भाव यह है, कि यद्यपि भूमी से उत्पन्न भई लिखी है, तथापि (जनकस्या पत्यं स्त्री जानकी) इस प्रकार अपत्यार्थक ही प्रत्यय मानके ही, जनक की बेटी कही जाय है। और ऐसे ही अग्निकुण्ड से उत्पन्न भई द्रौपदी कही जाय है। सो यहां पर भी "द्रुपदस्यापत्यं स्त्री द्रौपदी" अपत्यार्थक ही प्रत्यय माने हैं। इस द्रौपदी की उत्पत्ति की कथा का विस्तार महाभारत के आदि पर्वमें प्रसिद्ध है, ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखा।

मू०—किञ्च—यथाच "ऋक्षोऽभूद्भार्गव स्तस्माद्वाल्मीकियोंभिधीयते" वि० पु०॥ "भार्गवेणेति संस्कृतो। भार्गवेण तपस्विना" वा० रा० बा० कां०॥ इत्यादिषूक्तो भृगु पुत्रो निश्चल तया तपसि स्थितो वल्मीकेना वृतोऽभूत्तदा कृपया प्रचेतो नाम्ना वरुणेन कृत निरन्तर

वृष्ट्याऽनावृतः कृत एवं रक्षकस्य प्रचेतसोऽपत्यत्वात् ।

टी०—और जैसे "भृगु ऋषि के पुत्र ऋक्ष ऋषि हुए हैं, उनको ही वाल्मीकि नामसे कहा जाता है" वि०पु० ॥ "भार्गवेणोति संस्कृती" भृगु ऋषि के पुत्र ऋक्ष ऋषि ने जब संस्कार किया तब। "भार्गवेण तपस्विना" तपस्वी भृगु ऋषि के पुत्र ऋक्ष ऋषि करके वा०रा—वा—कां—॥ इत्यादि स्थानों पर कहे गये वाक्यों करके, भृगु के पुत्र ही जब तप में निश्चल समाधि लगाये के बैठ गये थे, तब उनको वल्मीक (वामी) ने, ऊपर से ढक लिया था, तब तिस काल में प्रचेता नाम वरुण ने, अपनी दयालुता से, निरन्तर वृष्टि करके, उनको (भृगु के पुत्र को) उसके भीतर से निकाला, (इस प्रकार वामी से निकलने से वाल्मीकि भी कह जाते हैं) और इस प्रकार रक्षा करने वाले प्रचेता के भी 'अपत्यत्वात्'—पुत्र होने से, अर्थात् उनको प्रचेता का, पुत्र, होना भी स्पष्ट ही है ।

मू०—"चक्रे प्रचेतसः पुत्रस्तं ब्रह्माप्यन्वमन्यतेति । वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना" इत्यादिषु स एव प्राचेतस

उच्यते । स च वल्मीकस्यानपत्य मपि ततः प्रादुर्भाव मात्र सम्बन्धेनापत्य वन्मत्वा वाल्मीकि रिति भाष्यते । एव मन्यत्र जाता अप्य न्यापत्यत्वेन स्वीकृता, यतः केनचित्स म्बन्धेन कृत्रिमे पुत्रे प्यपत्यत्वं भवति ॥

टी०—और ब्रह्माजीने भी तिस वाल्मीकि ऋषि को प्रचेता का पुत्र कहा है, और आप मान्या भी है। और साक्षात् जो वेद हैं सो प्राचेतसात्, अर्थात् वाल्मीकि ऋषि द्वारा रामायण रूप से प्रकट हुए हैं" इत्यादि स्थानों पर प्रचेता का पुत्र प्राचेतसः वाल्मीकि ऋषि कहा गया है। सो यहां पर भी "प्रचेतसः अपत्यं प्राचेतसः" कहाहै, इस वास्ते यहां "तस्येदम्" ४।३।१२ इस सूत्र से सम्बन्ध मात्र विवक्षा (कथन करने की इच्छा) होने से अण् प्रत्यय नहीं है, किन्तु 'प्रचेतसः अपत्यम् इस अर्थमें है। और वही वल्मीक के पुत्र न होते हुए भी, वल्मीक से केवल निकलने मात्रके सम्बन्ध से ही पुत्रवत भाव मानके, अर्थात् पुत्र के समान जान कर, अपत्यार्थक इञ् प्रत्ययान्त होने से वाल्मीकि कहे जाते हैं। इस तरह मनुष्य दूसरे कुलमें उत्पन्न होकर भी, दूसरे के पुत्र माने जाते हैं। क्यों

कि–भिन्न भिन्न सम्बन्धों से कृत्रिम पुत्रमें भी अपत्य-त्व अर्थात् अपत्यार्थक प्रत्यय होजाते हैं।

मू०–यथाच-"आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयं दत्तस्तुस स्मृतः" मनु स्मृ०अ०९श्लो० १७७॥ इत्यत्र यो यस्मा आत्मानं समर्पयति सतस्य द्वादश धा पुत्राणां मध्ये स्वयं दत्त साञ्ज्ञितः पुत्रो मनुनोक्त एव मात्म निवेदनेन भक्तोपि श्रीकृष्णस्य स्वयं दत्ताख्यः पुत्रो भवति॥ अतो निरङ्कुशतया ऽस्मदादिषु श्रीकृष्ण भक्तेषु कार्ष्णित्वं स्थास्याति॥

टी०–तीसरे यह बात है, कि-मनुस्मृति में कहा है, कि जैसे "जो अपने को जिस के लिये समपर्ण करदे, वह उसका स्वयं दत्तक संज्ञक पुत्र कहा गया है।" म० स्मृ० ९। १७७॥ इस मनु के वचना नुसार बारह प्रकार के पुत्रों में, एक स्वयं दत्तक नामका भी पुत्र होता है। उसी तरह भक्त भी अपना समपर्ण कर देने से, श्री कृष्ण जी का स्वयं दत्तक नामका पुत्रहै, इस लिये हम जैसे श्री कृष्ण भक्तों में निर्विवाद रूप करके अपत्य प्रत्ययान्त कार्ष्णि पना रहता है अर्थात्

हम सर्व श्री कृष्ण के भक्त, उन के पुत्र होने से, अपत्य प्रत्यान्त कार्ष्णि कहे जा सकते है ।

मू०—नन्विदानींतनेषु कृष्णापत्यत्वं मदीय बुद्धिं नैवारोहतीति चेद्वाल्मीकेः पिपीलका कृत मृत्पिण्डापत्यत्वं त्वद्बुद्धि मारोहत्, कृष्ण भक्तेषु कृष्णा पत्यत्वं नैवारोहत्य हो ते तर्क कुशलते त्यलम् ॥

टी०—प्रश्न—हे सिद्धान्ती ! आज कल के मनुष्यों को, श्री कृष्णके अपत्यत्व पुत्र स्वीकार करना हमारी बुद्धिमें नहीं आता, अर्थात् यह आपका कथन हमारी बुद्धि में नहीं बैठता, क्यों कि यह असम्भव सी वात है, आज पर्यन्त किसी ने भी अपने को कार्ष्णि नहीं कहा है, इस लिये संदेह होता है कार्ष्णि कहने में इति । हेवादी ! यदि ऐसा तुम कहता है, तो यह तुम्हारे विचार की सिथिलता ही संदेहजनक हो रही है, क्योंकि वाल्मीक को आपकी बुद्धि, दीमक करके रचा हुआ मट्टीके पिण्डका अपत्यत्व पुत्र स्वीकार करती है, जो कि चीटियों ने बना दिया था, किन्तु कृष्ण भक्तों को कृष्ण के पुत्र होना स्वीकार नहीं

करती। इस प्रकार वि....... ...ापकी ...द्धि तथा तर्क कुशलता को धन्य है अर्थात् अत्यन्त आश्चर्य है। भावार्थ यह है, कि–जैसे भूमी से उत्पन्न भई सीता, सो जनक की बेटी मानी गई है, और अग्नि कुण्डसे उत्पन्न भई द्रौपदी, सो जैसे द्रुपद राजाकी बेटी मानी गई है, और वामी से प्रकट हुए भृगु के पुत्र ऋक्ष ऋषि, सो वाल्मीकि माने जाते हैं। सो जिस प्रकार पूर्वोक्त उदाहरणों में, गौण सम्बन्ध को मानके, ही यहां पर अपत्ययार्थ में प्रत्यय ...ता है, तैसे ही गौण सम्बन्ध से, कार्ष्णि शब्द में भी अपत्ययार्थ प्रत्यय होता है, अर्थात् श्रीकृष्ण जी की आज्ञा पालनादि भक्तिवाले होने से भक्त भी कृष्णजी के पुत्र ही हैं "जैसे सिंहो देवदत्तः" अर्थ–देवदत्त नामा पुरुष सिंह है यद्यपि पुरुष सिंह नहीं हो सक्ता, तथापि सिंह के गुण शूरता बलिष्ठतादि अर्थात् सिंहके नाईं कर्तव्य करने से पुरुष सिंह कहा जाताहै। तैसे ही भगत भी श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न तथा ...ण्य अर्जुन उद्धवादी के समान आज्ञा पालनादि भक्ति वाले होने से गौणी वृत्ति से पुत्रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है, यदि इस प्रकार गौण पुत्रों में भी तुम्हारे को कृष्णजी के अपत्यपना मान्य नहीं होता, तो यह ही आपकी बुद्धि की कुशलता का तथा आश्चर्य का जनक है। क्योंकि श्रुति स्मृति युक्तियों करके कार्ष्णि

शब्द सिद्ध किया है, और तुम्हारी समझ में भी आता है। और पीछे फिर संदेह करते हो, तो यह तुमारी बुद्धि की मलीनता का ही दोष है, इस वास्ते पूर्वोक्त श्रुति स्मृति युक्ति अनुसार कथन किये कार्ष्णि शब्दका मनन करना ही श्रेष्ठ है, मनन करने से तब स्वयं ही तुम्हारे को निश्चय हो जायगा। इति। इस लिये इस (कार्ष्णि) शब्द की व्याख्या को भी, समाप्त करते हुए कहते हैं, कि, यद्यपि कार्ष्णि प्रयोग को "अत इञ्" इस सूत्र करके इञ् प्रत्ययान्त मानने में कोई भी दोष नहीं है, तथापि ग्रन्थकर्त्ता स्वनिश्चय को कहता है।

मू०—वयं कृष्णस्य कृष्णोनः, सर्वं भावै रतस्ततः।
तद्धित प्रत्यया स्सन्तू, चिताअन्ये ष्यणादयः॥१॥
योयोयस्यप्रियोभावः, शास्त्रोक्तोऽर्थोऽथवासच।
स्वीकरोतुतमेवेह, विकल्पोऽत्रास्ति न सताम्॥२॥

इति श्री मत्परमहंसोदासीन शिरोवतंस
स्वामि ज्ञान दास शिष्येण कार्ष्णि
गोपाल दासाह्वयेन विनि
र्मिता वतार मीमांसा
समाप्ता।

टी० इस लोक में तथा परलोक में, सम्पूर्ण भावों से हम श्रीकृष्ण जी के हैं, और श्रीकृष्ण जी हमारे हैं। इससे हम तो यहां पर इञ् प्रत्यय को अच्छा मानते हैं। दूसरो के मत से, दूसरे अणादिक प्रत्यय भी भले हो जाय, क्योंकि, शास्त्रोक्त अर्थों में जो जिसको, उचित प्रतीत होता है, वह उसी को ग्रहण करता है, इसविषय में सताम्, श्रेष्ठ पुरुषों को किसी प्रकारसे आग्रह नहीं होताहै॥ इति शुभम्भूयात् ॐ शान्तिः शान्तिःशान्तिः

इति श्री निखिल शास्त्र निष्णात कार्ष्णि जनावतंसकवि वर्य्य ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ श्री मत्परमहंस स्वामी कार्ष्णि गोपाल दास जी विरचित अवतार-मीमांसा सरलार्थ भाषा टीका व्रजमण्डलान्तर्गत गोकुलस्थ रत्नमोती संस्कृत पाठशालाध्यापक पण्डित माधव मनोहर शास्त्रिणा कृता समाप्ता।



* शुद्धि पत्रम् *

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सलैन्द्रिय	सलेन्द्रिय	वि.	५
रभूत	रभूत	वि.	६
लक्षणान्वताम्	लक्षणान्विताम्	१	८
का	के	३	७
भासो	भासों	३	१३
के	का	४	१६
प्रवृत्ति	प्रवृत्त	६	२
अनंता	अनन्तता	८	३
संबद्ध	संबन्ध	८	२०
अविद्य	अविद्या	८	२१
स्थित	स्थिति	१०	१२
कों	के	१०	२१
क्रेयांशा	क्रेमांशो	१२	५
पक्षि	पक्षी	१२	१२
लक्ष	लक्ष्य	१४	९
सामान	समान	१५	१२
सर्वा	विश्वा	१६	६
श्वतुर	श्वतर	१७	१२
स्मृत्यों	स्मृतियों	१८	५
प्रविशः	प्रवेशः	१८	१७
देह	देह	१९	१०
मैं	मुझ	१९	११
तृतीये	तृतीय	१९	१८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
अतिश्य	अतिशय	२१	९
नवमों	नवम	२१	१०
औषधियों	ओषधियों	२१	११
भगवतावतार	भगवदवतार	२२	३
दर्शयितुं	दर्शयितु	२२	७
कपिलत्व गोत्व लक्षणम्,	कपिलत्वं गोर्लक्षणम्	२३	९
श्रृंग	शृङ्ग	२३	१४
ऐक्षत्	ऐक्षत	२४	६
आवभाव	आविर्भाव	२७	३
नृसिंहादीनाम योनिजत्वं स्पष्ट मेवर्ति	इतना अधिक छप गया है	२७	१४
स्सन्त	स्सन्तु	२७	२
जस	जैसे	२८	९
कथानात्	कथनात्	२९	११
कंमजत्वं	कर्मजत्वं	३१	२
म	मे	३१	३
उपहुता	उपहूता	३२	१९
गंति भ्रमता	गती भ्रमता	३३	७
यों ने	अधिक है	३४	१०
कृष्णावतारऽभौतिकत्वं	कृष्णावतारा भौतिकत्वं	३५	१५
देह	देंह	३६	३
अथ	अर्थ	३६	१५
आत्म	आत्मा	३७	८
चौरादिक	चौरादिकों	३८	१२
		३०	१

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
अम्रि	अग्नि	४०	३
श्व	श्वे	४०	२३
ईश्वर वतारा:	ईश्वरावतारा:	४१	१०
ज्ञानि	ज्ञान	४१	१३
स्वातन्त्रातादि	स्वतन्त्रतादि	४२	१५
इश्वरा	ईश्वरा	४२	१८
श्व०	श्वे०	४३	२१
प्रागलभ्यं	प्रागल्भ्यं	४४	२१
वह	और	४६	१९
बभव	बभूव	४८	४८
विरोद्धि	विरोधी	४८	१२
प्रमण	प्रमाण	५१	१३
इश्वर	ईश्वर	५२	१६
रहत	रहित	५४	१०
विपर्य	विपर्यय	५४	१६
अपर्ण	अर्पण	५४	१७
करते करते	करते	५५	६
शक्तया	शक्त्या	५६	५
स्वातन्त्रयता	स्वातन्त्र्य	५६	१८
चरित	चरति	५९	१८
कतीथ्या	कतीत्या	६३	१२
जये	जीते	६५	१२
सन्मुखु	सन्मुख	६५	१७
अशरीरि	अशरीरी	६६	१८
भगवतावतार	भगवदवतार	६७	३

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
तापिनि	तापनी	६८	१२
स्वामि	स्वामी	६८	१८
हिरणय	हिरण्य	७०	९
क्रित	कृत	७०	१३
विसिष्ठ	वासिष्ठ	७०	१३
श्रा	श्री	७०	१६
स्त्रत	स्तत्र	७१	१९
भष्यत	भाष्यत	७२	७
सिद्धान्ति	सिद्धान्ती	७२	९
अगीं	अंगी	७३	१८
धर्मस्यति	धर्मस्येति	७३	२१
वैष्णव मन्या	वैष्णवंमन्या	७६	१०
वष्णव	वैष्णव	७७	१५
सम्पूरण	सम्पूर्ण	७८	६
है	हो	७८	७
दुर्लभ्य	दुर्लभ	७८	१०
कष्ण	कृष्ण	७८	१३
तैत्तरी	तैत्तिरीय	७९	२
तादात्मय परमश्वरो	तादात्म्य परमेश्वरो	७९	७
संपूर्ण	सम्पूर्ण	८०	२१
कटा	कट	८१	३
मृतिका	मृत्तिका	८१	४
सरावादिक	शरावादिक	८१	४
चातुराई	चतुराई	८१	८
वाले	से	८१	९

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
श्वतुर	श्वतर	८६	१६
करुणाभर्ण	कर्णाभरण	८८	१९
अतो इन्	अत इञ्	९०	४
तर्यो	तयो	९०	१५
निर्वाचन	निर्वचन	९१	८
अतो इञ्	अत इञ्	९१	१८
मदरा	मदिरा	९४	२१
आध्यम	अधम	९६	११
इत्यमर:	इत्यमरः	९९	१३
निरंकुशतया	निरङ्कुशतया	११२	१०

सूचना ।

पाठक महाशयों को विदित हो कि ऊपर लिखे शुद्धि पत्रानुसार पुस्तक को शुद्ध करके पाठ करें जिससे अर्थ ज्ञान में भ्रम नहीं रहे ।



❀ दोहा ❀



ईश्वर में गुण अमित हैं, जिस जन में दो चार।
ज्ञानी योगी भक्त सो, ईश अंश अवतार ॥१॥
ईश्वर के गुण सकल हैं, जिनमें परम उदार।
श्याम चतुर्भुज सर्ववित, ते पूरण अवतार ॥२॥
ईश अंश अवतार की, भक्ति करत है जौन।
हरि पूरण अवतार की, भक्ति पाय है तौन ॥३॥
पूरण की भक्ति किये, विरति बोध उपजात।
कर्मनाश होवे तभी, हरि में विज्ञ समात ॥४॥
या विध येवु विचार कर, गुरु में राखो प्रीत।
ईस अंश अवतार की, भक्ति कीजिये मीत ॥५॥
जिस जन पर करुणा करे, ईश अंश अवतार।
सो नर विना प्रयास से, उतरत है भव पार ॥६॥
निराकार की भक्ति को, कर न सकत जन अज्ञ।
भक्ति करे साकार की, बनन चहत जो तज्ज्ञ ॥७॥
गुरु ज्ञानी हरि भक्त नृप, पुन पूरण अवतार।
तिनके चरण सरोज में, करहै कार्ष्णि जुहार ॥८॥

* इति *

श्रीमत्परमहंस निखिल शास्त्र विख्यात
कार्ष्णि गोपालदास निर्मित—

पुस्तक सूचीपत्र तथा मिलने का पता।

१—वैराग्य भास्कर—संस्कृत भाषा टीका सहित।
२—कार्ष्णि कण्ठाभरण—अमरेश्वरीय टिप्पणी पुलिस
टीकोपेतम्।
पता—खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई।
३—भक्ति प्रकाश—जिसमें दशधा भक्ति (परा-अपरा नाम से)
से वर्णन है।
४—गोराक विलास—जिसमें श्री मद्भागवत दशम तथा
में और गर्ग संहितामें कथन की श्रीकृष्ण
का भाषा छन्दों में अनुवाद है।
५—कृष्ण क्रीडा का सार—जिसमें श्रीकृष्णजी की दस लीलाओं
अत्यन्त मनोहर भाषा छन्दों में वर्णन है
६—कार्ष्णि कीर्तनम्—गुरु भक्ति, ईश्वर भक्ति, ज्ञान वैराग्य
भजन गाने के।
७—प्रेम पत्र रामायण—इसमें भाषा दोहे चौपाई है।
पता—लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुम्बई।
८—प्रबोध चन्द्रोदय नाटक—भाषा छन्दों सहित।
९—कार्ष्णि कवच—कार्ष्णि किरीटम्।
१०—कार्ष्णि कर्णाभरण ब्रज घासोल्लास—भाषा छन्द युक्त गाने
भजन।
११—सु साधुता सुधा सिन्धुः—भाषा टीका सहित।
१२—साधु सिंहोपन्यास।
पता—भगत बिहारीलाल नंदलाल पटेल परमहंस
मु० जय श्री, पो० सीकरी, जि०
१३—प्रेम प्रवेदिका हरि आवाक पन्थ—यह भी देखने योग्य है
१४—पूर्व विकास (गोपीचन्द विनोद)—भाषा छन्द।